वाद्य शास्त्र

(उत्तर प्रदेश बोर्ड के इन्टर मीडियेट, प्रयाग और आगरा विश्वविद्यालय के बी० ए०, प्रयाग संगीत समिति के चतुर्थ और संगीत प्रभाकर तथा अन्य किसी भी समकक्ष परीक्षा के विद्यार्थियों के लिये)

लेखक

हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव,

एम० ए०, संगीत प्रभाकर (गायन और वादन)

सहायक अध्यापक डा० घोष माडरन कालेज,

इलाहाबाद ।

प्रकाशक

जगदीश नारायण पाठक

रजिस्ट्रार प्रयाग संगीत समिति

इलाहाबाद

१९५६ मूल्य २)

प्रकाशक

जगदीश नारायण पाठक

रजिस्ट्रार प्रयाग संगीत समिति

इलाहाबाद

प्रथम संस्करण २०००

मुद्रक

माधो प्रिंटिंग वर्क्स

बैरहना, इलाहाबाद

चिरस्मरणीय स्व० माता की पुण्य
स्मृति में

दो शब्द

खेद के साथ मुझे कहना पड़ता है कि आज संगीत की पुस्तकों का विशेष अभाव है। इधर पिछले कुछ वर्षों में संगीत की कुछ पुस्तकों का प्रकाशन अवश्य हुआ, किन्तु फिर भी संगीत की पुस्तकों की संख्या इतनी कम है कि किसी अन्य साहित्य से उनकी तुलना करने का प्रश्न ही नहीं उठता। दो-चार को छोड़ कर शेष सभी आधुनिक पुस्तकों में भाषा-दोष तथा भावों की अस्पष्टता के अतिरिक्त वैज्ञानिक विश्लेषण की विशेष कमी खटकती है। इसका मुख्य कारण है, संगीतज्ञों में उच्च शिक्षा का अभाव और सदियों से शास्त्र के प्रति उपेक्षा। इन सब कमियों को ध्यान में रखते हुये मैंने संगीत की पुस्तकों का प्रकाशन प्रारम्भ किया है। अतएव मैं ऐसे व्यक्तियों की खोज में रहता हूँ जिन्हें केवल संगीत की विशेष जानकारी ही नहीं अपितु उच्च शिक्षा तथा लेखनी पर नियंत्रण भी हो। श्री हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव ऐसे ही व्यक्ति हैं। इनके विषय में अधिक बतलाने की आवश्यकता नहीं। प्रस्तुत पुस्तक 'वाद्य शास्त्र' स्वयं अपने पाठकों को लेखक का वास्तविक परिचय दे देगी।

वाद्य शास्त्र अपने ढंग की सर्वप्रथम पुस्तक है जिसमें मुख्य वाद्यों का परिचय, इतिहास, घराना आदि पर विस्तार में प्रकाश डाला गया है। इतना ही नहीं सहायक नाद और पाश्चात्य स्वर-लिपि-पद्धति का विस्तृत वर्णन सर्वप्रथम इसी पुस्तक में हुआ है। अतः यह पुस्तक कई दृष्टि से अन्य पुस्तकों से श्रेष्ठ और इन्टर, बी० ए० तथा संगीत समिति के उच्च विद्यार्थियों के लिये विशेष रूप से उपयोगी है। मुझे इस पुस्तक को प्रकाशित करने में बड़ा हर्ष और संतोष प्राप्त हुआ है।

जगदीश नारायण पाठक
रजिस्ट्रार प्रयाग संगीत समिति
इलाहाबाद

Introduction.

Mr. Srivasatava has requested me to write an Introduction to this book. I do so, not only because he is a student of mine but also because such a book as Vadya Sastra is very necessary for the present day. Our lovers of musical literature will find in the present book a systematic development of some of the important musical instruments current in the country. Since from the very begining our exponents of Classical Music were apathetic towards instrumental music, specially with its theory portion, this work has been an uphill task for the author. A scholar of metaphysics and music as the author is, he has with a streak of his genius exposed a new line for the revaluation of this branch of Indian Music.

He has made a systematic study of the history, physical aspect, musical value and the existing styles with Gharanas of Sitar, Tabla and Violin. Besides this, Western Notation System has been dealt in detail.

I am fully convinced that a reader with sympathetic understanding will be amply rewarded in going through the book with minute care.

6th of Oct. 1955.

G. N. Goswami,
M. Sc., B. T.
National Inter College,
Lucknow.

भूमिका

किसी वस्तु का ज्ञान होना और ज्ञान को दूसरों तक शब्दों के द्वारा पहुँचाने की क्षमता होना दोनों पूर्णतया पृथक वस्तु हैं अतः केवल ज्ञान अथवा केवल क्षमता एक अच्छी पुस्तक के लिये अपर्याप्त है। वाद्य शास्त्र में दोनों गुणों को समन्वित करने का प्रयत्न किया गया है। मनुष्य के हाथ में प्रयत्न है, इसीलिये मुझे संतोष है। इस पुस्तक का नाम वाद्य शास्त्र है, और इसीलिये प्रथम दृष्टि में पाठकों को शायद यह आभास हो कि इस पुस्तक में कम से कम पांच छः वाद्यों पर जैसे तबला, सितार, बेला, सरोद, सारंगी और बाँसुरी पर अवश्य ही प्रकाश डाला गया होगा, किन्तु इस पुस्तक में ऐसा नहीं है। केवल सितार, तबला और बेला पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इसका मुख्य कारण है, समयाभाव तथा पुस्तक को अधिक से अधिक परीक्षोपयोगी बनाने का प्रयत्न। खेद के साथ कहना पड़ता है कि अभी तक सङ्गीत-जगत में कोई ऐसी पुस्तक नहीं थी जो वाद्य के विद्यार्थियों की अधिक से अधिक माँग पूरी करे। अतः यह पुस्तक अपने ढंग की प्रथम पुस्तक है जिसमें बेला, सितार और तबले के अंग, बाज, घराना, उपयोग आदि के अतिरिक्त सहायक नाद और पाश्चात्य स्वरलिपि-पद्धति पर विस्तार में विचार किया गया है। वाद्य शास्त्र के दूसरे संस्करण में अन्य वाद्यों को मुख्यतः सरोद को समावेश करने का अवश्य प्रयत्न करूँगा।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे प्रयाग संगीत समिति के रजिस्ट्रार श्री जगदीश नारायण पाठक से विशेष प्रोत्साहन मिला है। उन्होंने इस पुस्तक को शीघ्र समाप्त करने के लिये मुझे कई बार स्मरण दिलाया। यह निश्चित है कि इस वर्ष जब कि मेरे पास अन्य

आवश्यकीय कार्य थे पुस्तक का लेखन कदापि न होता अगर पाठक जी ने मुझे इतना अधिक प्रोत्साहन न दिया होता। अतः मैं उनका बहुत ही आभारी हूँ। दूसरे इस पुस्तक में मुझे अपने गुरुजनों इलाहाबाद के श्री जोई श्रीवास्तव और लखनऊ के श्री गोपी नाथ गोस्वामी से इतनी अधिक सहायता मिली हैं कि मेरे शब्दों के परे है। मुझे अपने मित्र श्री जगदीश नारायण चौबे तथा श्री गनेश प्रसाद शर्मा से बहुत अधिक सहायता मिली है। मैं इन दो व्यक्तियों का विशेष रूप से आभारी हूँ। पुस्तक के प्रकाशन में श्री 'जानकार' जी की तथा प्रूफ के पढ़ने में हमारे सहपाठी श्री बाल कृष्ण दुबे का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ है। मुझे अपने छोटे भाइयों गिरीश चन्द्र श्रीवास्तव तथा सतीश चन्द्र श्रीवाश्तव से पांडुलिपि के तैयार कराने में, प्रूफ के पढ़ने आदि में विशेष सहायता मिली है। इन दोनों व्यक्तियों के प्रति मैं मूक आभार प्रदर्शित करता हूँ। अन्त में उन सभी व्यक्तियो के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ जिनकी सहायता परोक्ष रूप में अथवा अपरोक्ष रूप में मुझे इस पुस्तक के लिखने में मिली है।

विजयादशमी १९५५
५५३ अहियापुर
इलाहाबाद

लेखक

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

विषय	पृष्ठ संख्या
१—हमारे वाद्य और उनके प्रकार	१—३
२—तम्बुरा	३
३—तम्बुरे के तार	३—४
४—तानपुरे के अंग	४—६
५—तानपुरे के मूल और सहायक नाद	६—११

द्वितीय अध्याय (तबला)

१—दाहिने तबले के अंग	१२—१३
२—डग्गा अथवा बांया के अंग	१३—१४
३—तबला मिलाने की विधि	१४—१५
४—तबले के वर्ण और उन्हें निकालने की विधि	१५—१७
५—ताल और उसके दस प्राण	१८—२२
६—लयकारी	२२—२५
७—लयकारी लिखने की विधि	२५—२६
८—टेढ़ी लयकारी लिखने की विधि	२६—२७
९—विभिन्न तालों की लयकारियाँ लिखने की विधि	२७—३०
१०—विभिन्न लयकारियों की प्रारम्भिक स्थान निकालना	३०—३३
११—कुछ तालों के ठेके	३४—४६
१२—तीनताल, झपताल, एकताल और चारताल	३४
१३—दादरा, कहरवा और झुमाली	३५

१४—रूपक, तीवरा और सूल ३६
१५—कव्वाली, खेमटा, झूमरा और दीपचंदी ३७—३८
१६—आड़ा चारताल, धमार और तिलवाड़ा ३८—३९
१७—अद्धा, जत और टप्पा ३९—४०
१८—पंजाबी, फरोदस्त और रुद्रताल ४०
१९—कुम्भ, पश्तो और गजझंपा ताल ४१
२०—छोटी अथवा पञ्चम सवारी ताल ४२
२१—बड़ी सवारी और शिखर ताल ४३
२२—मत्त और लक्ष्मी ताल ४४—४५
२३—सरस्वती, ब्रह्म, गणेश और बसन्त ताल ४५—४६
२४— कुछ पारिभाषिक शब्द ४७—५६
२५—लय और मात्रा ४७—४८
२६—ताल और विभाग ४८—४९
२७—सम, ताली और खाली, बोल, टुकड़ा ४९—५०
२८—ठेका, आवृति और संगत ५०—५१
२९—किस्म, तिहाई, मुखड़ा और मोहरा ५१—५२
३०—कायदा ५२
३१—पलटा ५३—५४
३२—गत, गत-कायदा, तिपल्ली, चौपल्ली और चक्करदार गत ५४—५५
३३—परन, उठान और लग्गी ५५—५६
३४—बाँट, पेशकारा, चलन अथवा चाला और लड़ी ५६
३५—तबले का जन्म ५७—५९
३६—तबले के घराने और उनकी विशेषतायें ६०—७१
३७—दिल्ली घराना ६१—६२
३८—अजराडा घराना ६२—६४
३९—लखनऊ घराना ६४—६५

४०—फरुखाबाद घराना ६६—६८
४१—बनारस घराना ६८—७०
४२—पञ्जाब घराना ७०—७१
४३—दक्षिणी अथवा कर्नाटक ताल-पद्धति ७२—७५

तीसरा अध्याय (वाइलिन अथवा बेला)

१—अंग वर्णन ७६—८०
२—बेला बजाने की बैठक ८०—८१
३—बेले के तार और उनके स्वर ८१—८२
४—बेले का जन्म और विकास ८३—८६
५—बेला बजाने की विभिन्न शैलियाँ ८७—६०
६—बेले का उपयोग ६१—६४

चतुर्थ अध्याय (सितार)

१—अंग वर्णन ६५—६८
२—सितार की बैठक ६८—६६
३—सितार के बोल और उन्हें निकालने की विधि ६६—१००
४—सितार के पारिभाषिक शब्द १००—१०८
५—ठाट, अचल और चल १००
६—बोल, आकर्ष और अपकर्ष प्रहार १०१
७—गत और उनके प्रकार तथा मसीदखानी गत १०१—१०२
८—रज़ाखानी गत १०२—१०३
६—जमजमा, झाला, मींड और सूत १०३—१०४
१०—जोड़ और घसीट १०४—१०५
११—पुकार, तोड़ा, लाग डाट तारपरन और लड़ंत १०५—१०७
१२—लड़ी, गुत्थी और लड़-गुथाव १०७

१३—छूट, कृन्तन, कस्बी और अताई १०७
१४—गमक १०८
१५—सितार का संक्षिप्त इतिहास १०८—११०
१६—सितार के घराने ११०—११२

पंचम अध्याय (पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति)

१—स्वरलिपि पद्धति का वर्गीकरण ११३—११४
२—सोल्फा स्वरलिपि पद्धति ११४
३—न्यूमूस स्वरलिपि पद्धति ११४—११५
४—चीव्ह स्वरलिपि पद्धति ११५
५—स्टाफ स्वरांकन पद्धति ११६—१३०
६—स्वर और उनके चिन्ह १२०—१२२
७—कण अथवा स्पर्श स्वर १२२—१२३
८—विश्रान्ति और विभाग १२३—१२४
९—स्वर और विराम १२४—१२६
१०—स्वर और उनका कालमान १२६—१२७
पाश्चात्य ताल-विभाग १२८—१२९
११—पाश्चात्य ताल के लक्षण १२९—१३०
१२—तालों के प्रकार १२९—१३०
१३—पाश्चात्य डाइटोनिक स्केल १३१—१३३
१४—स्वर-संवाद, सरल स्वर-संवाद और काउन्टर प्वाइन्ट हारमोनी १३३

छठवाँ अध्याय (भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास)

१—काल वर्गीकरण १३४
२—प्राचीन काल-विभाजन १३४

३—वैदिक काल	१३४—१३५
४—संदिग्घ काल	१३५—१३६
५—भरत काल	१३६—१३८
६—मध्य काल-विभाजन	१३९
७—पूर्व मध्य काल	१३९—१४१
८—उत्तर मध्य काल	१४१—१४४
९—आधुनिक काल	१४५—१५३
१०—विष्णु दिगम्बर पलुस्कर	१४९—१५१
११—विष्णु नारायण भातखंडे	१५२—१५३

प्रथम अध्याय

हमारे वाद्य और उनके प्रकार

आदि काल से भारतीय संगीत में वाद्यों का विशिष्ट स्थान रहा है। अजन्ता, एलोरा और एलिफेन्टा की चित्रकारी, मोहनजोदड़ों के भग्नावशेष तथा आदि कालीन ग्रंथ वेद इसके प्रमाण स्वरूप हैं। नृत्य-विशारद भगवान शंकर अपने प्रिय वाद्य डमरू के सहित और कला एवम् ज्ञान की अधिष्टात्री भगवती सरस्वती सदैव वीणा-युक्त चित्रित की गई हैं। किन्तु पाश्चात्य देशों की तुलना में भारतीय वाद्य उतने विकसित नहीं हुये हैं। इसका कारण यह है कि पाश्चात्य संगीत जितना बल वाद्यों पर देता है उतना भारतीय संगीत नहीं। 'संगीत रत्नाकर' के आधार पर भारतीय वाद्य चार प्रमुख भागों में विभाजित किये जा सकते हैं—तत्, सुषिर, अवनद्ध और घन।

"वाद्यतन्त्री ततं वाद्य सुषिरं सुषिरं मतम्।
"चर्मावनद्धवदनमवनद्धं तु वाद्यते॥
घनो मूर्तिः साऽभिघाताद्व्यते यन्त्र तद्घनम्॥"

—'संगीत रत्नाकर'

(१) जिन वाद्यों में ताँत अथवा तारों का प्रयोग होता है, वे तत् वाद्य कहलाते हैं, जैसे—तम्बुरा, सितार, सारंगी, वाइलिन इत्यादि। तत् वाद्यों की जननी वीणा मानी जाती है। इन वाद्यों को पुनः तीन भागों में बांटा जा सकता है। (अ) जो अँगुलियों, मिजराब अथवा जवा द्वारा बजाये जाते हैं, जैसे—सितार, वीणा, तम्बुरा, सरोद इत्यादि। (ब) जो गज अथवा कमानी द्वारा बजाये जाते हैं, जैसे—बेला, सारंगी, दिलरुबा आदि। (स) जो लकड़ियों अथवा हथौड़े के आघात द्वारा बजाया जाता है, जैसे—पियानों।

(२) जिन वाद्यों में स्वरोत्पत्ति वायु द्वारा होती है, वे सुषिर वाद्य कहलाते हैं, जैसे—हारमोनियम, शहनाई, क्लैरिनट, बाँसुरी, शंख, तुरही इत्यादि। इन वाद्यों को भी हम दो भागों में बाँट सकते हैं। (अ) पहला विभाग उन वाद्यों का है जिनमें पतली पत्ती अथवा रीड से स्वर उत्पन्न होते हैं, जैसे—हारमोनियम, शहनाई, आदि। (ब) दूसरा प्रकार उन वाद्यों का है जिनमें छिद्र द्वारा स्वर निकलते हैं, जैसे—बाँसुरी, बिगुल, शंख आदि।

(३) भारतीय वाद्यों का तीसरा प्रकार अवनद्ध वाद्यों का है। इन वाद्यों में चमड़े अथवा खाल को आघात करने से ध्वनि उत्पन्न होती है, जैसे—तबला, पखावज, ढोलक, डमरू, नगाड़ा, भेरी इत्यादि। इनका प्रयोग ताल देने के लिए होता है, क्योंकि इनमें क्रमशः एक ही स्वर निकलते हैं, इसीलिये इन वाद्यों में स्वर की अपेक्षा लय की प्रधानता रहती है। ये वाद्य मुख्यतः गायन और वादन की संगत के लिए प्रयोग किये जाते हैं। आजकल तबले का प्रयोग स्वतंत्र-वादन (Solo performance) में तथा कभी-कभी तबला-तरंग में भी होने लगा है।

(४) वाद्यों का अंतिम प्रकार घन वाद्य है। इनमें किसी धातु अथवा लकड़ी से स्वरोत्पत्ति होती है, जैसे—मजीरा, झाँझ, करताल, जल-तरंग, काष्ठ-तरंग, काँच-तरंग, नल-तरंग इत्यादि।

वाद्यों का उपयुक्त विभाजन आकार, उपयोग और उनके बजाने के ढंग पर आधारित है। वाद्य विभाजन की दृष्टि से विद्वानों में मुख्य तीन मत पाये जाते हैं। प्रथम मतानुसार सम्पूर्ण वाद्यों को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है, तत्, घन और सुषिर। इसमें अवनद्ध को घन में सम्मलित कर दिया गया है। दूसरे मतानुसार चार भागों में विभक्त किया गया है। इसके भी दो प्रकार हैं। पहले प्रकार में तत्, घन, अवनद्ध और सुषिर भागों में विभाजित किया गया हैं, जिसे हम ऊपर समझा चुके हैं। दूसरे प्रकार में तत्, वितत्,

घन और सुषिर वर्गों में बाँटा गया है। इस प्रकार से अवनद्ध को घन में सम्मिलित कर देते हैं और वितत् को तत् से पृथक कर देते हैं। मिजराब अथवा जवा से बजाये जाने वाले वाद्य तत् तथा छड़ी अथवा धनुष से बजाये जाने वाले वितत् कहलाते हैं। दोनों में समता यह है कि दोनों प्रकार के वाद्यों में तार अथवा ताँत द्वारा स्वरोत्पत्ति होती है। अंतिम मतानुसार कुल वाद्यों को पाँच भागों में विभाजित किया गया है तत्, वितत्, अवनद्ध, घन और सुषिर। अधिकांश विद्वानों द्वारा 'संगीतरत्नाकर' का उपर्युक्त विभाजन जिस पर ऊपर प्रकाश डाला जा चुका है, मान्य है।

तम्बुरा

साधारणतया इस वाद्य को तानपुरा के नाम से पुकारते हैं। उत्तरी भारतीय संगीत में इसने एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर लिया है। कारण यह है कि इसका स्वर बहुत ही मधुर तथा अनुकूल वातावरण की सृष्टि में सहायक होता है। तानपुरे की झंकार सुनते ही गायक की हृदय-तंत्री भी झंकरित हो उठती है। अतः इसका उपयोग गायन अथवा वादन में स्वर देने के लिये होता है। परोक्ष रूप से इसमें केवल इने-गिने स्वर निकलते हैं, लेकिन अपरोक्ष रूप में तानपुरे से सातों स्वरों की उत्पत्ति होती है, जिन्हें सहायक-नाद कहते हैं'। यह अवश्य है कि सभी तानपुरों और सभी व्यक्तियों के लिये ये नाद ग्राह्य नहीं हैं। ब्रह्म-वीणा, किन्नरी, सुरसोंटा आदि तानपुरे की जाति के वाद्य कहे जा सकते हैं।

तम्बुरे के तार—तानपुरे अथवा तम्बुरे में चार तार होते हैं। प्रथम तार को मन्द्र सप्तक के पंचम अथवा जिन रागों में पंचम का प्रयोग नही होता है, शुद्ध मध्यम में मिलाते हैं—जैसे राग ललित और मालकंस में इस तार को मन्द्र सप्तक के मध्यम में मिलाते हैं। कुछ रागों

में जिनमें न पंचम और न शुद्ध मध्यम का प्रयोग होता है—जैसे पूरिया, तो इसे मन्द्र निषाद में मिलाते हैं। यह तार पीतल का होता है। तानपुरे के दूसरे और तीसरे तार सदैव मध्य सप्तक के षड़ज से मिलाये जाते हैं। ये दोनों तार लोहे के होते हैं। चौथा अथवा अंतिम तार पीतल का होता है। इसे मन्द्र सप्तक के षड़ज से मिलाया जाता है। यह अन्य तारों की तुलना में मोटा होता है। स्त्रियों के तानपुरे का प्रथम तार भी लोहे का होता है, और अन्य तार पुरुषों के तानपुरे के समान दूसरा और तीसरा लोहे का तथा चौथ पीतल का होता है।

तानपुरे के अंग

(१) **तुम्बा**—यह लौकी का बना हुआ गोल आकृति का होता है। यह डाँड के नीचे के भाग में जुड़ा हुआ होता है। तुम्बे से तानपुरे की ध्वनि में वृद्धि तथा गूँज उत्पन्न होती है।

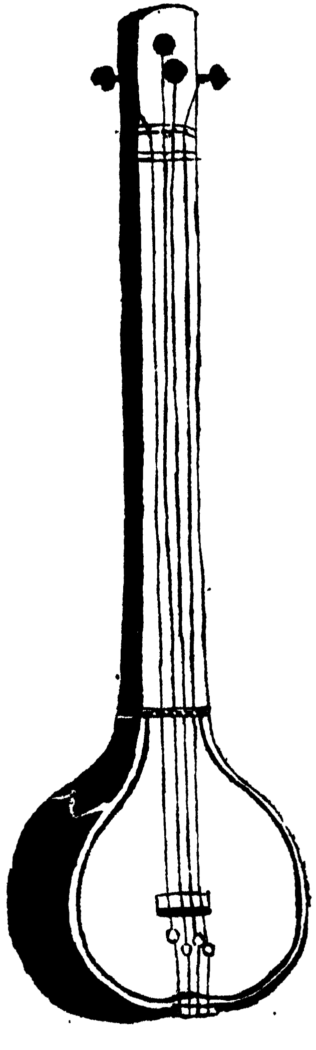
(२) **तबली**—लौकी का एक भाग काटकर अलग कर दिया जाता है और उसके शेष भाग को लकड़ी के एक टुकड़े से ढक देते हैं, जिसे तबली कहते हैं।

(३) **ब्रिज**—इसे घुरच अथवा घोड़ी भी कहते हैं। यह तबली के ऊपर स्थित होता है, जिस पर से तार पीछे जाते हैं। ब्रिज लकड़ी अथवा हड्डी का बना हुआ छोटी चौकी के आकार का होता है।

(४) **सूत अथवा धागा**—घुड़च और तारों के बीच सूत अथवा धागे का प्रयोग करते हैं। इसे ठीक स्थान पर स्थित कर देने से तम्बुरे की झनकार में वृद्धि होती है।

(५) **कील, मोगरा अथवा लंगोट**—तुम्बे के नीचे के भाग में तारों को बाँधने के लिये एक कीली होती है, अथवा एक तिकोनी पट्टी होती है, जिसे लंगोट अथवा मोगरा कहते हैं।

तानपुरा



(६) **पत्तियाँ**—तुम्बे के पिछले भाग में ऊपर की ओर सजावट के लिए लकड़ी की पत्तियाँ बनाई जाती हैं जिन्हें शृंगार भी कहते हैं।

(७) **गुल**—जिस स्थान पर तुम्बा और ऊपर का भाग मिलता है, गुल कहलाता है।

(८) **डाँड**—यह तानपुरे के ऊपर का भाग है जो लम्बी और पोली लकड़ी का बना हुआ होता है। इसके नीचे का भाग तुम्बे से जोड़ दिया जाता है और ऊपर के भाग में चार खूंटियाँ होती हैं। इसके ऊपर चारों तार तने रहते हैं।

(९) **अटी या अटक**—तानपूरे के चारों तार कील से घुड़च पर होते हुये ऊपर को जाते हैं। ऊपर की ओर सर्वप्रथम हाथी दाँत की एक पट्टी मिलती है, जिसपर चारों तार अलग-अलग रक्खे जाते हैं। यह पट्टी अटी या अटक कहलाती है।

(१०) **तारगहन अथवा तारदान**—तार अटी से होता हुआ पुनः ऊपर को जाता है। अटी के पश्चात् पास में लगी हुई दूसरी पट्टी के छिद्रों से होकर गुजरता है। इस दूसरी पट्टी को तारगहन अथवा तारदान कहते हैं।

(११) **खूंटियाँ**—तार अटी और तारगहन से होते हुये खूंटियों में बाँध दिये जाते हैं। ये खूंटियां तानपुरे के ऊपरी भाग में होती हैं। दो खूंटियाँ तानपुरे के सामने के भाग में एक डांड़ की बांई ओर और दूसरी दाहिने ओर होती है।

(१२) **तार**—यह तो हम बतला ही चुके हैं कि तानपुरे में चार तार होते हैं। पुरुषों के तानपुरे में प्रथम और अंतिम तार पीतल का होता है और अन्य दो बीच के तार लोहे के होते हैं। किन्तु स्त्रियों के तानपुरे में केवल अंतिम तार पीतल का होता है और अन्य तीन लोहे के होते हैं।

(१३) **मनका**—घुड़च और कील के बीच में स्वरों के सूक्ष्म अंतर को ठीक करने के लिए मोती अथवा हाथी दाँत के छोटे टुकड़े तानपुरे के चारों तार में अलग-अलग पिरोये जाते हैं। इन्हें मनका कहते हैं। हाथी दांत के टुकड़े विभिन्न आकृतियों के होते हैं।

तानपुरे के मूल और सहायक-नाद

पीछे हम इस पर विचार कर चुके हैं कि तानपुरे के चारों तार किन-किन स्वरों में अलग-अलग मिलाये जाते हैं। अतः तानपुरे से उत्पन्न वे नाद जिनसे तानपुरे के तार मिलाये जाते हैं, मूल-नाद कहलाते हैं और इनके अतिरिक्त तानपुरे से जो अन्य नाद निकलते हैं सहायक-नाद कहलाते हैं। इन नादों को 'स्वयंभू-स्वर' भी कहा जाता है, क्योंकि ये स्वतः उत्पन्न होते हैं। 'स्वयंभू' के अर्थ होते हैं स्वतः पैदा होने वाले। इसलिए स्वयंभू-स्वर के अर्थ होते हैं स्वतः उत्पन्न होने वाले स्वर। वैज्ञानिकों का कथन है कि प्रत्येक वाद्य में मूल-नाद के अतिरिक्त कुछ सहायक-नाद भी उत्पन्न होते हैं, किन्तु सहायक-नादों की संख्या, क्रम और प्राबल्य प्रत्येक वाद्य में एक दूसरे से भिन्न रहता है। इसीलिये प्रत्येक वाद्य का स्वर अथवा नाद दूसरे वाद्य के उसी स्वर अथवा नाद से भिन्न हो जाता है, जिसे नाद की जाति कहते हैं। सहायक-नादों को ठीक प्रकार से सुनने के लिये विशेष अनुभवी कानों की आवश्यकता होती है अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति सहायक-नादों को सुनकर समझ नहीं सकता है। तत् और वितत् वाद्यों के सहायक-नाद अन्य प्रकार के वाद्यों की तुलना में कुछ अधिक स्पष्ट होते हैं।

तानपुरे में सहायक-नादों की उत्पत्ति वैज्ञानिक क्रम से होती है अर्थात् मूल स्वर से १: २: ३: ४: ५: ६ इत्यादि के अनुपात से

उत्पन्न होते हैं। दूसरे शब्दों में सहायक-नाद मूल-नाद से दुगने, तिगुने, चौगुने, पँचगुने आदि क्रम से उत्पन्न होते हैं। नीचे हम गणित द्वारा सहायक-नाद की संख्या पर विचार करेंगे। किन्तु इसके पूर्व सप्त स्वरों की आन्दोलन संख्या पर एक दृष्टि डाल लेना आवश्यक होगा।

सा	रे	ग	म	प	ध	नी
२४०	२७०	$३०१\frac{१७}{४३}$	३२०	३६०	४०५	$४५२\frac{४}{४३}$

तानपुरे का प्रथम तार मन्द्र सप्तक के **पंचम** में ध्वनित होता है इसलिये उसकी आन्दोलन संख्या $\frac{३६०}{२}$ = १८० होगी। क्योंकि मध्य सप्तक के पंचम की आन्दोलन संख्या ३६० है और मन्द्र सप्तक का प्रत्येक स्वर मध्य सप्तक के उसी स्वर की आन्दोलन संख्या का आधा होता है। तानपुरे का दूसरा और तीसरा तार मध्य **सा** में मिलाया जाता है, इसलिये उनकी आन्दोलन संख्या २४० होगी। तानपुरे का चौथा तार जो मन्द्र सप्तक के **षड्ज** से मिलाया जाता है उसकी आन्दोलन संख्या $\frac{२४०}{२}$ = १२० होगी। अब हम यह विचार करेंगे कि प्रत्येक तार से कौन-कौन सहायक-नाद उत्पन्न होते हैं।

तानपुरे के प्रथम तार से मूल-स्वर, मन्द्र का **पंचम** जिसकी आन्दोलन संख्या १८० होती है उत्पन्न होगा। मूल स्वर की आन्दोलन संख्या में क्रमशः दो, तीन, चार, अथवा पांच आदि संख्या से गुणा करते जावेंगे जिससे सहायक-नाद की ऊँचाई और संख्या ज्ञात हो जावेगी।

मन्द्र पंचम के तार से उत्पन्न सहायक-नाद

	आन्दोलन संख्या	**स्वर**
(१)	१८०	**मन्द्र का पंचम** (मूल स्वर)
(२)	१८० × २ = ३६०	**मध्य सप्तक का पंचम**

(३) १८० × ३ = ५४० यह आन्दोलन-संख्या **तार सप्तक के रिषभ** की होगी, क्योंकि मध्य रे की आन्दोलन-संख्या २७० होती है और एक सप्तक ऊँचा स्वर उस स्वर का दूना होता है। २७० × २ = ५४०।

(४) १८० × ४ = ७२० ३६० मध्य सप्तक के **पंचम** की आन्दोलन-संख्या होती है। इसलिये ३६० × २ = ७२० **तार के पंचम** की आन्दोलन-संख्या होगी।

(५) १८० × ५ = ९०० $\frac{९००}{२}$ = ४५०. मध्य **नी** की आन्दोलन-संख्या ४५२$\frac{४}{४३}$ होती है। किन्तु दोनों में केवल २$\frac{४}{४३}$ का अंतर होने की वजह से ४५० को भी शुद्ध **नी** कहा जा सकता है। अतः ९०० की आन्दोलन-संख्या **अति तार के नी** की होगी।

(६) १८० × ६ = १०८० यह आन्दोलन-संख्या **अति तार के रिषभ** की होगी क्योंकि १०८० का आधा ५४० होता है जो तार के रिषभ की आन्दोलन-संख्या होती है।

(७) १८० × ७ = १२६० **अति तार के मध्यम** से कुछ कम, १२६० का आधा ६३० और इसका आधा ३१५ होता है, जबकि मध्य सप्तक के मध्यम की आन्दोलन-संख्या ३२० होती है।

(८) १८० × ८ = १४४० **अति तार का पञ्चम**, १४४० का आधा ७२० और इसका आधा ३६० होता है।

(९) १८० × ९ = १६२० **अति तार का धैवत**, १६२० का आधा ८१० और इसका आधा ४०५ होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तानपुरे के प्रथम तार से मुख्यतः **प ध नी** और **रे** सहायक-नाद निकलते हैं। यह तार कभी-कभी मन्द्र सप्तक के मध्यम से मिलाया जाता है। अतः मध्यम से उत्पन्न सहायक-नादों पर भी दृष्टि डालना आवश्यक होगा। मध्य सप्तक के मध्यम की आन्दोलन-संख्या ३२० होती है इसलिये मन्द्र मध्यम की आन्दोलन-संख्या $\frac{३२०}{२}$ = १६० होगी।

मन्द्र म के तार से उत्पन्न सहायक-नाद

आन्दोलन-संख्या	**स्वर**
(१) १६०	**मन्द्र का मध्यम**—मूल स्वर
(२) १६० × २ = ३२०	**मध्य सप्तक का मध्यम**
(३) १६० × ३ = ४८०	**तार सा**
(४) १६० × ४ = ६४०	**तार सप्तक का मध्यम**, क्योंकि मध्य सप्तक के मध्यम की आन्दोलन-संख्या ३२० है।
(५) १६० × ५ = ८००	यह आन्दोलन-संख्या पाश्चात्य तार सप्तक के धैवत की है। क्योंकि ८०० का आधा ४०० होता है, किन्तु भारतीय धैवत की आन्दोलत-संख्या ४०५

होती है। फिर भी केवल ५ आन्दोलन का अन्तर होने से यह **तार का धैवत** कहा जा सकता है।

(६)	१६० × ६ = ९६०	**अति तार** का **सा**
(७)	१६० × ७ = ११२०	यह आन्दोलन-संख्या **अति तार** सप्तक के **कोमल ग** से कुछ **कम** है।
(८)	१६० × ८ = १२८०	अति तार सप्तक का मध्यम, क्योंकि १२८० का आधा ६४० और इसका आधा ३२० होता है।
(९)	१६० × ९ = १४४०	**अति तार का पंचम**, क्योंकि १४४० का आधा ७२० और इसका आधा ३६० होता है जो मध्य सप्तक के पंचम की आन्दोलन-संख्या होती है।

इस प्रकार मध्यम में मिलाने से मुख्यतः **म प ध सा** सहायक-नाद उत्पन्न होते हैं। तानपुरे का दूसरा और तीसरा तार मध्य सप्तक के षड्ज से मिलाया जाता है, जिसकी आन्दोलन-संख्या २४० होती है। और चौथा तार मन्द्र **सा** में मिलाया जाता है।

मन्द्र-षड्ज से उत्पन्न सहायक-नाद

	आन्दोलन-संख्या	स्वर
(१)	१२०	मन्द्र का **सा** (**मूल स्वर**)
(२)	१२० × २ = २४०	मध्य का **सा**
(३)	१२० × ३ = ३६०	मध्य का **पंचम**
(४)	१२० × ४ = ४८०	तार सप्तक का **सा**
(५)	१२० × ५ = ६००	**तार सप्तक का ग**, क्योंकि मध्य सप्तक के **ग** की आन्दोलन-संख्या ३०० होती है।

(६) १२० × ६ = ७२० **तार का पंचम** क्योंकि मध्य के पंचम की आन्दोलन-संख्या ३६० होती है।

(७) १२० × ७ = ८४० तार सप्तक का अति कोमल **नी**।

(८) १२० × ८ = ९६० **अति तार सा**, क्योंकि तार **सा** की आन्दोलन-संख्या ४८० होता है।

(९) १२० × ९ = १०८० **अति तार का रिषभ**

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस तार से मुख्य **स रे ग प** सहायक-नाद उत्पन्न होते हैं। तानपुरे के द्वितीय और तृतीय तारों के सहायक-नाद निकालने की आवश्यकता नहीं क्योंकि उनके सहायक-नाद और चौथे तार के सहायक-नाद समान होंगे, अर्थात् दूसरे और तीसरे तारों से भी **स रे ग प**, स्वर निकलेंगे। कारण यह है कि तीनों तार **स** में मिलाये जाते हैं। तानपुरे के सम्पूर्ण सहायक-नादों को एक में कर लेने से हम इस निष्कर्ष तक पहुँचते हैं कि **तानपुरे से सातो स्वरों की उत्पत्ति होती है।**

द्वितीय अध्याय

तबला

आधुनिक काल के संगीत में गायन तथा वादन की संगत में तबले का प्रमुख स्थान है। तबले के जन्म के पूर्व यही स्थान पखावज अथवा मृदंग को प्राप्त था। कुछ दिनों से तबले का स्वतन्त्र-वादन (Solo performance) भी लोक प्रिय होता जा रहा है। संगीत-सभाओं और संगीत-सम्मेलनों में स्वतन्त्र-वादन भी कभी-कभी सुनने को मिल जाता है, लेकिन अधिक समय तक स्वतन्त्र-वादन केवल मर्मज्ञ श्रोताओं के लिए ही आनन्ददायक होता है।

तबले को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, (१) दाहिना जिसे कुछ लोग दाहिना तबला भी कहते हैं, (२) बायां अथवा डग्गा। नीचे अब हम दोनों भागों के अंगों पर क्रमशः विचार करेंगे।

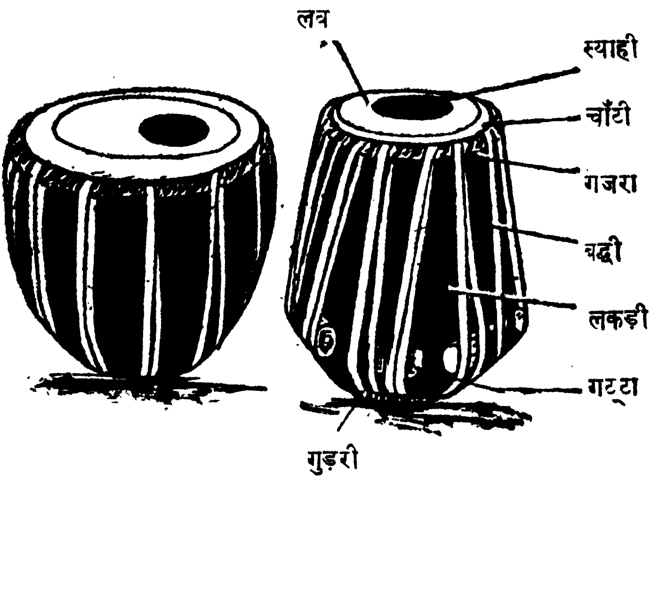
दाहिने तबले के अंग

(क) **लकड़ी**—यह अधिकतर कटहल, आम, खैर, सागौन, विजय साल तथा चन्दन की लकड़ी की बनी हुई होती है। यह अन्दर से खोखली होती है। इसकी आकृति गोल, ऊपर की परिधि का व्यास लगभग सात इन्च और नीचे का लगभग नौ इन्च, तथा लगभग एक फीट ऊँची होती है। नीचे का व्यास ऊपर की तुलना में कुछ अधिक होता है।

(ख) **पूड़ी**—लकड़ी के मुँह पर रक्खे हुए पूरे चमड़े को पूड़ी कहते हैं। पूड़ी, चाँटी, लव, स्याही, खाल का संयुक्त नाम है।

(ग) **गजरा**—पूड़ी को चमड़े के बने हुए गजरे में गूथ दिया जाता है। गजरे में १६ छिद्र होते हैं जिनमें से बद्धी गुजरती है।

तबला



(घ) **चाँटी**—पूड़ी के किनारे-किनारे चमड़े की लगी हुई पट्टी को चाँटी कहते हैं।

(ङ) **स्याही**—पूड़ी के बीचोबीच चाँटी से लगभग एक इन्च की दूरी पर चंद्राकार काले मसाले को स्याही कहते हैं। पतली स्याही लगाने से तबला ऊँचे स्वर में तथा मोटी से नीचे स्वर में मिलता है।

(च) **लव**—चाँटी और स्याही के बीच के खाली स्थान को लव कहते हैं।

(छ) **बद्धी**—गजरे के बीच से जाने वाली चमड़े की लम्बी पट्टी को बद्धी कहते हैं। बद्धी द्वारा पूड़ी कसी रहती है। बद्धी गट्टे पर से होती हुई ऊपर और नीचे के गजरों में फँसी रहती है।

(ज) **गट्टे**—दाहिने तबले की लकड़ी के ऊपर के भाग पर लकड़ी के आठ लम्बे और गोल टुकड़े होते हैं, इन टुकड़ों को गट्टा कहते हैं। गट्टे बद्धी से दबे रहते हैं। गट्टे को नीचे खिसकाने से तबले का स्वर ऊपर और ऊपर खिसकाने से नीचे जाता है।

(झ) **गुड़री**—तबले की पेंदी में चमड़े का बना हुआ एक गजरा जिसमें से बद्धी गुजरती है गुड़री कहलाती है। इससे एक ओर बद्धी और पूड़ी कसी रहती है और दूसरी ओर इसके सहारे तबला ज़मीन पर टिकता है।

डग्गा अथवा बायां के अंग

(क) **कूड़ी**—जिस प्रकार दाहिने तबले में लकड़ी पर पूड़ी आदि कसी रहती है, उसी प्रकार डग्गे में मिट्टी के बने हुये बर्तन के मुँह पर पूड़ी कसी रहती है। यह बर्तन कभी-कभी ताँबे अथवा लकड़ी का भी होता है।

(ख) **पूड़ी**—कूड़ी के मुख पर आच्छादित चमड़े को पूड़ी कहते हैं। दाहिने के समान डग्गे की पूड़ी में भी चांटी, लव और स्याही का समावेश होता है।

(ग) **चांटी**—पूड़ी के किनारे-किनारे लगी हुई पट्टी को चांटी कहते हैं।

(घ) **स्याही**—पूड़ी में ऊपर की ओर स्थित चन्द्राकार काली वस्तु को स्याही कहते हैं।

(ङ) **लव**—चांटी और स्याही के बीच के खाली स्थान को लव कहते हैं। इसे खाल भी कहते हैं।

(च) **गजरा**—दाहिने के समान डग्गे में भी चमड़े के बने हुये हार में पूड़ी गुथी रहती है। यह कूड़ी की चोटी पर उसके चारों ओर रहती है।

(छ) **डोरी**—कुछ डग्गों में डोरी और कुछ में चमड़े की लम्बी पट्टी प्रयोग की जाती है। डोरी को कसने के लिये छल्ले लगे रहते हैं।

(ज) **गुड़री**—दाहिने के समान बाँये की पेंदी में भी चमड़े का हार होता है, जिसे गुड़री कहते हैं।

तबला मिलाने की विधि—दाहिना तबला षड़ज, पंचम अथवा मध्यम में मिलाया जाता है। जिन रागों में पंचम प्रयोग होता है उन्हें गाते अथया बजाते समय दाहिने तबले को पंचम में और जिनमें पंचम वर्ज्य होता है और शुद्ध मध्यम का प्रयोग होता है जैसे मालकंस और ललित में, तो दाहिने को शुद्ध मध्यम में मिलाते हैं। जिन रागों में पंचम और शुद्ध मध्यम दोनों वर्ज्य होते हैं जैसे मारवा, सोहिनी, पूरिया आदि में, तो दाहिने तबले को षड़ज में मिलाते हैं। तार षड़ज में मिला हुआ तबला कानों को बड़ा प्रिय मालूम होता है तबले को जब अधिक चढ़ाना अथवा उतारना होता है तो गट्टे को नीचे अथवा ऊपर करते हैं। लेकिन कम अन्तर के लिए गजरे को हथौड़ी से आघात करते है। चढ़ाने के लिए गजरे को ऊपर से और उतारने के लिए नीचे से आघात करते हैं। इसी प्रकार गट्टे को नीचे से अघात करने से स्वर उतरता है और ऊपर से

आघात करने से चढ़ता है। छोटे मुँह का तबला ऊपर के स्वरों में और बड़े मुँह का नीचे के स्वरों में मिलता है।

तबले के वर्ण और उन्हें निकालने की विधि

वर्ण के अर्थ 'अक्षर' होते हैं। इसलिये जो अक्षर जैसे **धा, धि, तू, ना** आदि तबले में प्रयोग किये जाते हैं, तबले के वर्ण कहलाते हैं। वर्णों की संख्या में दो मत हैं। प्रथम मतानुसार दस और दूसरे मतानुसार सात वर्ण होते हैं। प्रथम मतानुसार केवल बायें पर निकलने वाले ३, और बायें-दायें दोनों के संयोग से निकलने वाले २ वर्ण होते हैं। निम्नलिखित तालिका से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

(अ) केवल दाहिने तबले पर बजने वाले वर्ण—

(१) **ता** या **ना** (२) **तिं** या **ती** (३) **दिं** या **थुँ** (४) **ते** या **ति** (५) **तू** (६) **रे** या **टे**।

(ब) केवल बायें पर बजने वाले वर्ण—

(१) **के, कि, क, कत** (२) **घे** या **गे**

(स) दोनों के संयोग से बजने वाले वर्ण—

(१) **धा** (२) **धिं**

दूसरे मतानुसार सात वर्ण होते हैं, पाँच दाहिने के और दो बायें के।

दाहिने तबले के वर्ण—

(१) **ती** (२) **ना** (३) **दिं** (४) **ति** अथवा **ते** (५) **रि** अथवा **रे**

बायें तबले के वर्ण—

(१) **धि** (२) **कत**

नीचे इनके बजाने की विधि पर विचार किया जाता है। सरलता के लिए तर्जनी के स्थान पर पहली, मध्यमांगुलि के स्थान पर दूसरी, अनामिका के स्थान पर तीसरी और कनिष्ठका के स्थान पर चौथी अंगुली प्रयोग किया गया है।

केवल दाहिने पर निकलने वाले वर्ण

(१) **ता और ना**—दाहिने पर पहली अँगुली से लव तथा चाँटी पर आघात करने और शीघ्र ही उठा लेने से जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसे **ता** कहते हैं। केवल चाँटी पर उत्पन्न ध्वनि को **ना** कहते हैं। इस प्रकार **ता** चाँटी और लव दोनों के संयोग से निकलता है और **ना** केवल चाँटी से।

(२) **तिं या ती**—पहली अँगुली से केवल **लव** पर आघात करने और शीघ्र उठा लेने से **तिं** या **ती** निकलता है। **तिं** या **ती** केवल **लव** पर बजता है और **ता** लव और चाँटी दोनों के संयोग से निकलता है।

(३) **दिं या थुँ**—हाथ की अन्तिम चारों अँगुलियों को एक साथ जोड़ कर स्याही के किनारे पर धीरे से आघात कर शीघ्र उठा लेने से **दिं** या **थुँ** का बोल निकलता है। इसे निकालते समय हथेली का अन्तिम भाग चाँटी पर पड़ता है।

(४) **ति या ते**—इसे स्याही पर दो प्रकार से निकालते हैं। दिल्ली और अजराड़ा घराने के वादक केवल दूसरी अँगुली से स्याही के बीचोबीच आघात करते हैं और पूरब घराने के वादक उसी स्थान पर दूसरी और तीसरी अँगुलियों को एक साथ जोड़ कर आघात करते हैं और जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे **ति** अथवा **ते** कहते हैं।

(५) **तू**—पहली अंगुली से स्याही के नीचे के किनारे पर थोड़ा दाहिने ओर बढ़कर धीरे से आघात करने से **तू** की ध्वनि निकलती है।

(६) **रे या टे**—यह स्याही के बीचोबीच प्रथम अंगुली से निकलता है। **रे** या **टे** का प्रयोग सदैव **ति** या **ते** के साथ होता है इसलिये **ति** या **ते** के बाद उसी स्थान पर पहली अंगुली से **रे** या **टे** निकालने के लिये आघात करते हैं।

केवल बायें पर बजने वाले वर्ण

(१) **के, कि, का या कत्**—बायें पर पांचो अँगुलियों को जोड़ कर हथेली सहित आघात करने से **के, कि, का** या **कत्** की ध्वनि निकलती है।

(२) **घे या गे**—बायें में ऊपर की ओर स्याही और चाँटी के बीच लव पर पहली और दूसरी अंगुली को जोड़कर आघात करने से **घे** या **गे** निकलता है। हथेली का अन्तिम भाग स्याही के दूसरे किनारे पर रहता है।

दोनों हाथों से बजने वाले वर्ण

(१) **धा**—दाहिने के **तिं** या **ता** और बायें के घे और **गे** को एक साथ बजाने से **धा** वर्ण निकलता है।

(२) **धिं**—दाहिने के **तिं** और बायें के घे अथवा **गे** को एक साथ बजाने से धिं निकलता है।

ताल और उसके दस प्राण

विभिन्न मात्राओं के अलग-अलग समूहों को ताल कहते हैं। संगीत में समय नापने के लिये ताल का विधान किया गया है। ताल अनेक होते हैं। उनमें मात्रा, बोल, खाली तथा ताली का अन्तर होता है। कभी-कभी दो तालों में केवल बोल का अन्तर होता है, जैसे एकताल और चारताल। तालों का सम्बन्ध गीत के विभिन्न प्रकारों से होता है, उदाहरणार्थ ख्याल के साथ तीनताल, एकताल, झूमरा और आड़ा चारताल का, ध्रुपद के साथ चारताल, शुलफाक आदि का तथा ठुमरी के साथ दीपचंदी, अद्धा, और जत ताल का प्रयोग होता है। प्रत्येक ताल को निश्चित भागों में विभाजित कर दिया गया है, जिन्हें विभाग कहते हैं। प्रत्येक विभाग की प्रथम मात्रा पर ताली होती है। प्रथम विभाग के प्रथम मात्रा को सम कहते हैं, दूसरे शब्दों में पहली ताली को सम कहते हैं। इस प्रकार भारतीय तालों का निर्माण निम्नलिखित पाँच बातों पर हुआ है, (१) मात्रा (२) विभाग (३) ताली (४) खाली और (५) बोल।

शास्त्रकारों ने ताल के दस प्राण माने हैं, काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति और प्रस्तार।

"कालो मार्गः क्रियांगानि ग्रहो जाति-कला-लयाः
यति-प्रस्तार कश्येति ताल प्राण दशस्मृता।"

उपर्युक्त शब्दों का प्रयोग प्राचीन काल में और आज भी कर्नाटक-संगीत में होता है। उत्तर भारतीय-संगीत में इनका प्रयोग लगभग समाप्त सा हो गया है, किन्तु संक्षेप में इन शब्दों पर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

(१) **काल**—संगीत में अर्थात् गायन, वादन और नृत्य में समय को काल कहते हैं। काल को विभिन्न भागों में विभाजित कर दिया गया है, जैसे—मात्रा, विभाग, ताल, किसी गीत की स्थाई, अंतरा आदि। इनका उपयोग संगीत में समय नापने का होता है। अतः ये काल-मान कहे जा सकते हैं।

(२) **मार्ग**—किसी भी ताल में प्रथम मात्रा से अन्तिम मात्रा तक के चाल को मार्ग कहते हैं। इसमें ताली, खाली, विभाग और मात्रा की पारिस्परिक दूरी का समावेश होता है अर्थात् मात्रा, ताली, खाली और विभाग किस रीति से और कितनी दूरी पर आते हैं। कर्नाटक-संगीत में इसका कितना महत्व है, हम केवल इसी तथ्य से समझ सकते हैं कि वहाँ लघु की मात्राओं की संख्या में परिवर्तन करने से नये ताल उत्पन्न होते हैं। कर्नाटक-पद्धति में लघु को क्रमशः तीन, चार, पाँच, सात अथवा नौ अक्षर-कालों का मान लेने पर ३५ तालों की रचना हुई। समय को नापने के लिये एक छोटी इकाई को 'अक्षरकाल' कहते हैं।

(३) **क्रिया**—किसी भी ताल को दो तरह से दिखाया जा सकता है—तबले अथवा परवावज पर बजाकर के अथवा हथेली पर आघात करके। हथेली पर ताल दिखलाने की विधि को क्रिया कहते हैं। क्रियायें भी दो प्रकार की होती हैं। (१) जब हम ताली बजाते हैं, जिसे सशब्द क्रिया कहते हैं और (२) जब ताली न देकर अंगुलियों अथवा हाथ को किसी ओर हिलाकर मात्रायें या विभाग गिनते हैं, तो इस क्रिया को निःशब्द क्रिया कहते हैं। उत्तर भारतीय संगीत में खाली दिखलाने की विधि तथा प्रत्येक विभाग के बीच की मात्राओं को अंकित करने की विधि निःशब्द क्रिया के अन्तर्गत आती है। कर्नाटक-संगीत-पद्धति में खाली को विसर्जितम् कहते हैं। विसर्जितम् किसी विभाग की प्रथम मात्रा पर नहीं होती बल्कि प्रत्येक विभाग की मात्राओं को दिखलाने की क्रिया को विसर्जितम् कहते हैं। विसर्जितम्

तीन प्रकार से दिखलाया जाता है। (१) जब हाथ को ऊपर उठाते हैं तो उसे पताकं-विसर्जितम् कहते हैं। (२) जब हाथ बाँई ओर ले जाते हैं, तो उसे कृषय-विसर्जितम् कहते हैं। और (३) जब हाथ दाहिने ओर ले जाते हैं तो उसे सर्पिणि-विसर्जितम् कहते हैं।

(४) **अंग**—कर्नाटक संगीत में ताल के विभागों को अंग कहते हैं। विभाग अथवा अंग छः प्रकार के होते हैं। इन्हीं अंगों से कर्नाटक के ताल निर्मित हैं। विभिन्न अक्षर-कालों के विभाग के चिंह नीचे दिये जा रहे हैं।

अंग-संख्या	**नाम**	**चिन्ह**	**अक्षरकाल**
१	अणुद्रुत	‿	१
२	द्रुत	०	२
३	लघु	।	४
४	गुरू	8 या ऽ	८
५	प्लुत	८' या ३	१२
६	काकपद	+	१६

(५) **ग्रह**—किसी ताल के जिस मात्रे से गीत प्रारभ करते हैं, वह स्थान ग्रह कहलाता है। ग्रह चार प्रकार के होते हैं—सम, विषम, अतीत और अनागत।

(**अ**) **सम-ग्रह**—जब गीत ताल की पहली मात्रा से प्रारंभ होता है तो वह स्थान सम-ग्रह कहलाता है। उत्तर भारतीय संगीत में आज-कल प्रत्येक ताल की पहली मात्रा सम कहलाती है चाहे उस स्थान से गीत प्रारंभ हो अथवा न हो।

(**ब**) **विषम-ग्रह**—जब गीत ताल की प्रथम मात्रा से प्रारम्भ न होकर ताल की किसी अन्य मात्रा से प्रारंभ हो तो वह स्थान अथवा मात्रा विषम-ग्रह कहलाती है।

(स) अतीत-ग्रह—अतीत का शाब्दिक अर्थ है,बीता हुआ। इसलिये मुख्य सम के बाद गीत का सम जिस स्थान पर आता है, अतीत-ग्रह कहलाता है।

(द) अनागत-ग्रह—इसी प्रकार अनागत के शाब्दिक अर्थ हैं, आने वाला। इसलिये मुख्य सम के पहले ही सम दिखाने से उस स्थान को अनागत-ग्रह कहते हैं। मुख्य-सम नकली-सम के बाद आता है।

वास्तव में अतीत और अनागत-ग्रह विषम-ग्रह के प्रकार कहे जा सकते हैं। इनका प्रयोग अधिकतर गायन अथवा वादन में चमत्कार पैदा करने तथा सम को भ्रम में डालने के लिये होता है। तबलिया सम के बाद धा मारकर अतीत और सम के पूर्व धा मारकर अनागत-ग्रह प्रदर्शित करता है।

(६) जाति—दक्षिणी संगीत में जाति से विभाग की मात्राओं की संख्या का बोध होता है। वहाँ सात ताल मुख्य माने जाते हैं—ध्रुव, मठ रूपक, झंप, त्रिपुट अठ और एक। प्रत्येक ताल की पाँच-पाँच जातियां होती हैं—चतस्त्र, तिस्त्र, मिश्र, खंड और संकीर्ण। लघु की मात्रा में परिवर्तन करने से जातियों की उत्पत्ति होती है, अर्थात् चतस्त्र जाति में लघु चार मात्राओं का, तिस्त्र में तीन मात्राओं का, मिश्र में सात मात्राओं का, खंड में पाँच मात्राओं का और संकीर्ण जाति में लघु नौ मात्राओं का होता है। इस प्रकार से दक्षिणी पद्धति की तालों में लघु की मात्राओं में परिवर्तन कर देने से ७ × ५ = ३५ तालों की रचना हुई।

हिन्दुस्तानी संगीत में जाति का अर्थ स्पष्ट नहीं रहा। कर्नाटक-संगीत के आधार पर समान संख्या की मात्राओं के विभाग वाले ताल, जैसे—तीनताल और कहरवा चतस्त्र जाति का, दादरा तिस्त्र जाति का, झपताल खंड जाति का, झूमरा मिश्र जाति का तथा धमार संकीर्ण जाति का ताल कहा जा सकता है।

(७) **कला**—तबला, पखावज अथवा मृदंगम बजाने की विधि और शैली को कला कहते हैं। वाद्य पर हाथ रखने का तरीका, बैठने का आसन, विभिन्न बोलों को निकालने की रीति और उनका उपयोग आदि कला के अंतर्गत आते हैं। कला के ही आधार पर तबले में विभिन्न घरानों का जन्म हुआ।

(८) **लय**—समय की गति को लय कहते हैं। लय के तीन प्रकार माने गये हैं, बिलंबित, मध्य और द्रुत। मध्य-लय घड़ी के सेकन्ड के बराबर होती है, किन्तु लय घटाने और बढ़ाने की पूर्ण स्वतन्त्रता गायक अथवा वादक को रहती है। साधारणतया द्रुत-लय मध्य-लय का दूना और मध्य-लय बिलंबित-लय का दूना माना जाता है। किन्तु आजकल अधिक विलंबित-लय का प्रयोग होने लगा है।

(९) **यति**—संगीत में समय नापने की रीति को यति कहते हैं। शास्त्रकारों ने पाँच प्रकार के यति बताये हैं, किन्तु आजकल न तो उनका प्रयोग ही होता है और न उनका अर्थ ही स्पष्ट है।

(१०) **प्रस्तार** –इसके अर्थ होते हैं विस्तार। किसी ताल को कायदे, पलटे, रेले, टुकड़े आदि द्वारा विस्तार करने की क्रिया को प्रस्तार कहते हैं।

लयकारी

संगीत में गायक अथवा वादक सर्वप्रथम अपनी एक लय निश्चित करता है और तत्पश्चात् अपनी कलात्मक साधना का परिचय उस लय में देता है। कभी वह पूर्व निश्चित लय के एक मात्रे में एक स्वर, कभी दो स्वर अथवा तीन स्वर और कभी चार स्वर अथवा बोल बोलने अथवा बजाने का प्रयत्न करता है। इतना ही नहीं कभी वह दो मात्राओं में तीन अथवा चार मात्राओं में पाँच स्वर अथवा बोल उच्चारित करता है। इस तरह वह इस प्रकार की अनेक क्रियाये करता है। इसी क्रिया को लय-

कारी कहते हैं। लयकारी का नामकरण पूर्व निश्चित लय के एक मात्रे में गाये अथवा बजाने वाले स्वर या बोल संख्या के आधार पर होता है। एक मात्रे में वह जितनी मात्रायें, बोल अथवा स्वर निकालता है, उसी संख्या अथवा संख्या-विभाग के नाम पर उस लयकारी का नामकरण होता है, उदाहरणार्थ एक मात्रे में तीन मात्रायें बोली जाने वाली लयकारी तिगुन और दो मात्राओं में तीन मात्रायें बोली जाने वाली लयकारी ३/२ गुन कह लायेगी। क्योंकि जब दो मात्राओं में तीन मात्रायें बोली जाती हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि एक मात्रे में ३/२ मात्रा बोली जाती है।

गणित द्वारा लय के अनेक प्रकार संभव हो सकते हैं। किन्तु केवल मुख्य लयकारियाँ नीचे समझाई जा रही हैं।

(१) **एक गुन अथवा बराबर की लय**—अर्थात् एक मात्रे में एक स्वर अथवा मात्रा बोलना।

(२) **दुगुन अथवा दो गुन**—अर्थात् एक मात्रे में दो स्वर अथवा मात्रा बोलना।

(३) **आधी-गुन**—अर्थात् दो मात्राओं में एक स्वर अथवा मात्रा बोलना। इसी प्रकार से तीन, चार, पाँच अथवा छः मात्राओं में एक स्वर बोले जा सकते हैं, किन्तु ऐसी लयकारियाँ केवल गणित ही द्वारा संभव है साधारणतया इनका प्रयोग नहीं होता।

(४) **तिगुन**—अर्थात् एक मात्रे में तीन स्वर अथवा मात्रायें बोलना।

(५) **चौगुन**—अर्थात् एक मात्रे में चार स्वर अथवा मात्रायें बोलना।

(६) **पचगुन**—अर्थात् एक मात्रे में पाँच स्वर अथवा मात्रायें बोलना।

(७) **छःगुन**—अर्थात् एक मात्रे में छः स्वर अथवा मात्रायें बोलना।

इस प्रकार से सतगुन, अठगुन इत्यादि अनेक लयकारियाँ संभव हो सकती हैं। एक मात्रे में सात और आठ मात्रायें या स्वर बोलने से क्रमशः सतगुन और अठगुन की लयकारी होगी।

(८) १½ **गुन अथवा** $\frac{3}{2}$ **गुन**—अर्थात् एक मात्रे में १½ मात्रायें बोलना या दो मात्राओं में तीन मात्रायें बोलना।

इस लयकारी को आड़ भी कहते हैं। आड़ के दो अर्थ होते हैं, सामान्य-अर्थ और विशेष-अर्थ। सामान्य-अर्थ में कोई भी टेढ़ी लय जैसे १ में ३, २ में ३, ३ में ४, ४ में ५ इत्यादि की लयकारियां आड़ कहलाती है। विशेष अर्थ में केवल डेढ़गुन अर्थात् $\frac{3}{2}$ गुन आड़ कहलाती है। यह लयकारी तिगुन की आधी होती है।

(९) $\frac{2}{3}$ **गुन**—अर्थात् तीन मात्राओं में दो मात्रायें अथवा स्वर बोलना।

(१०) $\frac{4}{3}$ **गुन**—अर्थात् तीन मात्राओं में चार स्वर अथवा मात्रायें बोलना।

(११) $\frac{3}{4}$ **गुन अथवा पौन गुन**—अर्थात् चार मात्राओं में तीन स्वर अथवा मात्रायें बोलना।

(१२) $\frac{5}{4}$ **गुन अथवा सवा गुन**—अर्थात् चार मात्राओं में पाँच स्वर अथवा मात्रायें बोलना।

इस लयकारी को कुआड़ भी कहते हैं। कुआड़ के अर्थ में भी दो मत हैं। प्रथम मतानुसार सवागुन कुआड़ की लयकारी कहलाती है, और द्वितीय मतानुसार आड़ की आड़ कुआड़ कहलाती है। आड़ के अर्थ $\frac{3}{2}$ गुन होते हैं इसलिये आड़ की आड़ $\frac{3}{2} \times \frac{3}{2} = \frac{9}{4}$ गुन होगी। $\frac{9}{4}$ गुन का अर्थ है ४ मात्राओं में ९ मात्रायें बोलना।

(१३) $\frac{4}{5}$ **गुन**—अर्थात् पाँच मात्राओं में चार स्वर अथवा मात्रायें बोलना।

इस प्रकार से अनेक लयकारियाँ गणित द्वारा संभव हैं, किन्तु केवल उपर्युक्त मुख्य लयकारियों पर ही नियंत्रण पाना सर्वसाधारण व्यक्तियों के मान का नहीं है।

लयकारी लिखने की विधि

(१) बराबर की लय लिखने वाले के लिए भातखंडे-पद्धति में स्वरों अथवा अंकों को अलग-अलग बराबर-बराबर दूरी पर लिख दिया जाता है जैसे १ २ ३ ४ ।

(२) दुगुन की लय लिखने के लिये दो स्वरों अथवा अंकों को एक मात्रे में लिख दिया जाता है जैसे १२ ३४ ५६ अथवा सरे गम पध ।

(३) आधी-गुन में एक स्वर अथवा एक अंक आधे मात्रे में बोलते हैं। यह लयकारी दुगुन की ठीक उलटी होती है। दुगुन में जहाँ दो मात्राओं में चार मात्रायें बोली जाती है, आधी गुन में दो मात्राओं को चार मात्राओं में बोलते हैं। इसलिए अधगुन लिखने के लिये प्रत्येक स्वर अथवा अंक में एक-एक मात्रा बढ़ाकर आधी लयकारी कर देते हैं जैसे :—

१ — २ —

(४) तिगुन लिखने के लिये तीन स्वरों, अंकों अथवा बोलों को एक मात्रे में लिखते हैं जैसे :—

१ २ ३ ४ ५ ६ अथवा धा धी ना धा तू ना

(५) चौगुन की लयकारी लिखने के लिये चार स्वरों, अंकों अथवा बोलों को एक मात्रे में लिखते हैं जैसे :—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ अथवा स रे ग प ध प म ग

(६) पचगुन की लयकारी लिखने के लिए पांच मात्राओं, स्वरों, अथवा बोलों को एक मात्रे में लिखते हैं जैसे :—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ६ १० अथवा धी ना धी धी ना ती ना धी धी ना

इस प्रकार छः गुन, सातगुन अथवा आठगुन आदि की लयकारियाँ लिखी जा सकती है। एक मात्रे में हम जितनी मात्रायें लिखेंगे लयकारी उतनी ही गुनी होगी।

टेढ़ी लयकारियाँ लिखने की विधि

अब समस्या ऐसी लयकारियों की उठती हैं जो सीधी नहीं हैं, जैसे—३/२, ४/५ और ३/७ गुन इत्यादि। इस समस्या को हल करने के पूर्व एक बात जान लेना आवश्यक है कि टेढ़ी लयकारियां सदैव भिन्न में होती हैं जैसे ३/२ गुन आदि। इनमें, जितनी मात्रायें बोली जाती हैं वे ऊपर होती हैं और जितनी मात्राओं में बोली जाती हैं, उसकी संख्या नीचे होती है। उदाहरणार्थ ३/२ गुन के अर्थ यह हैं कि दो मात्राओं में तीन मात्रायें बोलना। इसी प्रकार ४/३ गुन के अर्थ हैं ३ में ४ बोलना, ४/५ गुन के अर्थ हैं ५ में ४ बोलना, ९/४ गुन के अर्थ हैं ४ मात्राओं में ६ मात्रायें बोलना।

इस प्रकार की लयकारियां लिखने के लिए पहले ऊपर के अंक को थोड़ी-थोड़ी दूर पर लिखते हैं और फिर नीचे के अंक के बराबर प्रत्येक मात्रे के विभाग करते हैं। अंत में ऊपर की संख्या के बराबर विभागों को एक-एक मात्रे में लिखते हैं। मान लिया ३/२ गुन की लयकारी लिखनी है। इसलिए पहले तीन अंक अलग-अलग लिखेंगे।

१ २ ३

इसके बाद प्रत्येक के दो-दो विभाग करेंगे।

१ ऽ २ ऽ ३ ऽ

इसके बाद पीछे से तीन तीन मात्राओं को एक एक मात्रे में लिखेंगे।

१ ऽ २ ऽ ३ ऽ

इस प्रकार हम देखते हैं कि तीन मात्राओं को दो मात्राओं में लिखा गया है। इसी तरह से हम अन्य लयकारियों को भी लिख सकते हैं।

$\frac{२}{३}$ गुन — १ऽ ऽ२ ऽऽ

$\frac{४}{३}$ गुन — १ऽऽ२ ऽऽ३ऽ ऽ४ऽऽ

$\frac{३}{४}$ गुन (पौन गुन)— १ ऽऽ ऽ २ ऽ ऽ ऽ ३ ऽऽऽ

$\frac{५}{४}$ गुन (सवा गुन)— १ऽऽऽ२ ऽऽऽ३ऽ ऽऽ४ऽऽ

ऽ ५ ऽऽऽ

विभिन्न तालों की लयकारियाँ लिखने की विधि

किसी भी ताल की लयकारी लिखने के लिए सर्वप्रथम उसके बोल के एक-एक मात्रे को थोड़ी-थोड़ी दूर पर अलग-अलग लिखते हैं। इसके बाद अगर सीधी लयकारी लिखनी है जैसे दुगुन, तिगुन, चौगुन इत्यादि तो आवश्यकतानुसार क्रमशः दो, तीन अथवा चार मात्राओं को एक मात्रे में लिखते हैं जैसे,

एक ताल की दुगुन—**धिं धिं धा गे, तिरकिट तू ना कत्ता धागे, तिरकिट धीना**

चार ताल की तिगुन— **धा धा दिं ता किट धा दिं, ता, किट तक गदि गन**

तीन ताल की चौगुन—**धा धिं धिं धा धा धिं धिं धा धा तिं तिं ता ता धिं धिं धा**

किसी ताल की टेढ़ी लयकारी जैसे २/३ गुन, ३/२ गुन, ३/४ गुन इत्यादि लिखने के लिए सर्वप्रथम उस ताल के बोल को एक-एक मात्रा दिखाते हुये थोड़ी-थोड़ी दूर पर लिखते हैं। तत्पश्चात् लयकारी के नीचे की संख्या के बराबर प्रत्येक मात्रे के विभाग करते हैं और अंत में लयकारी के ऊपर की संख्या के बराबर विभागों को एक-एक मात्रा में लिखते हैं। नीचे हम एक ताल की ३/२ गुन अर्थात् आड़ लिखते हैं।

धिं ऽ धिं ऽ धा गे तिर किट तू ऽ ना ऽ क ऽ त्ता ऽ धा गे तिर, किट, धी ऽ ना ऽ

विधि—(अ) सर्वप्रथम हमने एकताल की एक-एक मात्रा थोड़ी-थोड़ी दूर पर लिखा।

धिं धिं धागे तिरकिट तू ना क त्ता धागे तिरकिट धी ना

(ब) इसके बाद हर एक मात्रा के दो-दो विभाग किये। अतः जो बोल एक-एक मात्रे के हैं उनमें एक-एक अवग्रह जोड़ दिया, किन्तु जो बोल आधे-आधे मात्रे के हैं जैसे धा गे उनमें अवग्रह जोड़ने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे पहले से ही एक मात्रे में दो हैं। उन्हें हम केवल अलग-अलग लिख देंगे। तिरकिट में चार वर्ण एक मात्रे में है। इसलिए इसमें भी अवग्रह जोड़ने की आवश्यकता नहीं, बल्कि दो-दो बोलों को एक-एक मात्रे में लिख देंगे जिससे पूरी तिरकिट जो कि एक मात्रे में थी अब दो मात्राओं में हो जावेगी। अवग्रह जोड़ने पर एकताल का निम्नलिखित रूप होगा।

धिं ऽ धिं ऽ धा गे तिर किट तू ऽ ना ऽ क ऽ त्ता ऽ धागे तिर किट धी ऽ ना ऽ

(स) इसके बाद तीन-तीन विभागों को एक-एक मात्रे में लिखेंगे, क्योंकि लयकारी के ऊपर की संख्या ३ है।

धिंऽ धिं | ऽ धागे | तिर,किट,तू | ऽ ना ऽ | क ऽ त्ता | ऽ धागे
तिर,किट,धी | ऽ ना ऽ

इसे करते समय यह बात ध्यान में रहे कि (स) क्रिया अर्थात् विभागों को एक एक मात्रे में लिखने की क्रिया पीछे से चलनी चाहिये। उदाहरणार्थ एक ताल की $\frac{3}{2}$ गुन लिखने के लिये सबसे पहले ऽ ना ऽ को एक मात्रे में लिखेगे। उसके बाद **तिर किट धीं** को और तब ऽ **धागे** को क्रमशः एक मात्रे में लिखेगे। इस प्रकार से आगे बढ़ते जावेंगे।

किसी भी ताल की कोई भी टेढ़ी लयकारी उपर्युक्त तरीके से लिखी जा सकती है। नीचे हम कुछ तालों की अन्य लयकारियाँ भी लिखेंगे जिससे यह विधि पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जावे।

एक ताल की $\frac{3}{4}$ गुन (अर्थात् पौन गुन)

धिंऽऽ | ऽधिंऽ | ऽऽधा | ऽगेऽ | ति र कि | ट तू ऽ | ऽऽना | ऽऽऽ
कऽऽ | ऽत्ताऽ | ऽऽधा | ऽगेऽ | ति र कि | ट धी ऽ | ऽऽना | ऽऽऽ

एक ताल की $\frac{3}{4}$ गुन (अर्थात् ४ मात्राओं में ३ मात्रायें बोलना) १६ मात्राओं में आयेगी। इसको हम गणित द्वारा भी निकाल सकते हैं।

∵ ३ मात्रायें बोली जाती हैं ४ मात्राओं में

∴ १ मात्रा बोली जायेगी (कम मात्राओं में) = $\frac{4}{3}$ मात्राओं में

∴ १२ मात्रायें ,, ,, (अधिक मात्राओं में) = $\frac{4}{3}$ × १२ ,,

= ४ × ४ = १६ मात्राओं में

इस प्रकार से हम देखते हैं कि एक ताल की $\frac{3}{4}$ गुन १६ मात्राओं में बोली जावेगी।

झपताल की $\frac{5}{4}$ गुन (अर्थात् सवा गुन)

धीऽऽऽना ऽऽऽधीऽ ऽऽधीऽऽ ऽनाऽऽऽ

तीऽऽऽना ऽऽऽधीऽ ऽऽधीऽऽ ऽनाऽऽऽ

बिभिन्न लयकारियों की प्रारम्भिक स्थान निकलना

पीछे हम बता ही चुके हैं कि सीधी लयकारियाँ अर्थात दुगन, तिगुन, चौगुन इत्यादि लिखने में अवग्रह लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। लेकिन टेढ़ी लयकारियाँ जैसे $\frac{3}{2}$ गुन, $\frac{3}{4}$ गुन इत्यादि लिखने में अवग्रह लगाने की आवश्यकता पड़ती है। इसके बाद हम यह भी बता चुके हैं कि विभागों को पीछे से लयकारी के अनुसार एक-एक मात्रे में लिखना प्रारम्भ करते हैं। उदाहरणार्थ जैसे हमें झपताल की दुगुन लिखनी है तो पहले झपताल लिखेंगे।

धी ना धी धी ना ती ना धी धी ना

इसके बाद पीछे से दो-दो बोलों को एक-एक मात्रे में लिखते जावेंगे, पहले ना धी को एक मात्रे में लिखेंगे, फिर धीना, तीना, धी धी और अंत में ना धी को क्रमशः एक एक मात्रे में लिख देंगे।

धीना धीधी नाती नाधी धीना

इस प्रकार हम झपताल की दुगुन तो लिख देंगे परन्तु अब दून का प्रारम्भिक स्थान (मात्रा) पता लगाने की समस्या उठती है। इसके लिये दून लिखने के बाद पीछे से ही मात्रा गिनना शुरू करेंगे, जैसे—नाधी पर १०, धीना पर ९, तीना पर ८, धीधी पर ७, और नाधी पर ६ डालेंगे। इसका अर्थ यह हैं कि झपताल की दून छठवीं मात्रा से अथवा पांचवी मात्रा के बाद से प्रारम्भ की जावेगी।

६	७	८	९	१०
धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना

झपताल में छठवीं मात्रा पर खाली और आठवीं मात्रा पर तीसरी ताली है इसलिए दून में भी ताली, खाली डाल देंगे।

६	७	८	९	१०
धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना
०		३		

यह हुई सीधी लयकारी के विषय में। अब टेढ़ी लयकारी के विषय पर विचार करना आवश्यक है। नीचे झपताल की आड़ अथवा $\frac{3}{2}$ गुन दी जा रही है।

झपताल की आड़

धीऽ नाऽधी ऽधीऽ नाऽती ऽनाऽ धीऽधी ऽनाऽ

यह आड़ उपर्युक्त नियम के आधार पर (नीचे की संख्या के बराबर विभाग करना और ऊपर की संख्या के बराबर विभागों को एक एक मात्रे में पीछे से लिखना) लिखी गई है।

इसके बाद पीछे से ही मात्रा डालना प्रारम्भ करेंगे।

	५	६	७	८	९	१०
×धीऽ	नाऽधी	ऽधीऽ	नाऽती	ऽनाऽ	धीऽधी	ऽनाऽ

पीछे से सब से अंत के विभाग में हम यह देखते हैं कि केवल दो ही विभाग शेष बचते हैं। उन्हें भी पूरा करने के लिये १ नम्बर डाल देंगे जैसे १ धी ऽ और ऊपर ४ थी मात्रा डाल देगें। चूँकि प्रत्येक मात्रे में तीन विभाग हैं इसलिये एक विभाग $\frac{1}{3}$ मात्रे के बराबर होगा। झपताल की आड़ पीछे से चौथी मात्रा तक आती है अर्थात् पूरी तीन मात्रायें आगे बची रहती हैं और चौथी मात्रा में भी $\frac{1}{3}$ मात्रा बच जाती है। बची हुई मात्राओं को जोड़ लेंगे इसलिये आड़ अथवा

३/२ गुन ३ + १/३ = ३ १/३ मात्रे के बाद प्रारम्भ करेंगें। नीचे की तालिका से यह विधि स्पष्ट हो जावेगी।

१	२	३	४	५
ऽऽऽ	ऽऽऽ	ऽऽऽ	१ धी ऽ	ना ऽ धी
×		२		

६	७	८	९	१०
ऽ धी ऽ	ना ऽ ती	ऽ ना ऽ	धी ऽ धी	ऽ ना ऽ
०			३	

इसी आधार पर अन्य तालों की अन्य टेढ़ी लयकारियाँ भी लिखी जा सकती हैं। पीछे से मात्रा डालना प्रारम्भ करेंगे और अगर अंत में अन्तिम मात्रा पूरी नहीं होती है तो उसे पूरा कर देंगे। लेकिन जितनी मात्रायें जोड़ेगे उसका मान अलग निकाल लेंगे। इसके पश्चात् इसे और आगे बची हुई मात्राओं को जोड़ लेंगे। जितना जोड़ने पर आवेगा उतनी ही मात्राओं के बाद उस लयकारी को प्रारम्भ करेंगे। नीचे इसी प्रकार की लयकारी का दूसरा उदाहरण दिया जा रहा है।

चारताल की ५/४ गुन या सवा गुन

	४	५	६	७
× × धाऽऽ	ऽधाऽऽऽ	दिंऽऽऽता	ऽऽऽकिऽ	टऽधाऽऽ

८	९	१०	११
ऽ दिं ऽऽऽ	ता ऽऽऽ कि	ऽ ट ऽ त ऽ	क ऽ ग ऽ दि

१२
ऽ ग ऽ न ऽ

पीछे से अन्तिम मात्रे में केवल तीन ही विभाग हैं, जब कि इस मात्रे में भी अन्य मात्राओं के समान पाँच विभाग होना चाहिये। इसलिए २ विभाग और जोड़कर उस मात्रे को पूरा कर लेंगे। इन दो विभागों का मान होगा $\frac{२}{५}$। क्योंकि जब ५ विभागों का मान है १, इसलिए १ विभाग का मान होगा $\frac{१}{५}$ और २ विभाग का मान होगा $\frac{२}{५}$।

१	२	३	४	५	६
ऽऽऽऽऽ	ऽऽऽऽऽ	१ २ धाऽऽ	ऽ धा ऽऽऽ	दिंऽऽऽता	ऽऽऽकिऽ
×		०		२	
७	८	९	१०	११	१२
टऽधाऽऽ	ऽदिंऽऽऽ	ताऽऽऽकि	ऽ टऽतऽ	कऽगऽदि	ऽगऽनऽ
०		३		४	

इस लयकारी को देखने से मालूम होता है कि पूरी-पूरी दो मात्रायें बच जाती हैं। तीसरी मात्रा में भी दो विभाग बच जाते हैं, जिनका मान २/५ मात्रा होता है। इसलिये २ + २/५ = २$\frac{२}{५}$ मात्रे के बाद से चार ताल की $\frac{५}{४}$ गुन अथवा सवागुन प्रारम्भ होगी।

———

कुछ तालों के ठेके

(१) तीनताल—मात्रा—१६

विभाग ४, ताली १, ५, १३ पर और खाली ६ पर

ना धिं धिं ना	ना धिं धिं ना	ना तिं तिं ता	ता धिं धिं धा
×	२	०	३

अथवा

धा धिं धिं धा	धा धिं धिं धा	धा तिं तिं ता	ता धिं धिं धा
×	२	०	२

---

(२) झपताल—मात्रा १०

विभाग ४, ताली १, ३, ८ पर और खाली ६ पर

धी ना	धी धी ना	ती ना	धी धी ना
×	२	०	३

---

(३) एकताल—मात्रा १२

विभाग ६, ताली १, ५, ९, ११ पर और ३, ७ पर खाली

धिं धिं	धागे तिरकिट	तू ना	क त्ता	धागे तिरकिट	धी ना
×	०	२	०	३	४

---

(४) चारताल—मात्रा १२

विभाग ६, ताली १, ५, ९, ११ पर और ३, ७ पर खाली

धा धा	दिं ता	किट धा	दिं ता	किट तक	गदि गन
×	०	२	०	६	४

---

(५) दादरा ताल—मात्रा ६

विभाग २, ताली १ पर और खाली ४ पर

धा	धी	ना	धा	तू	ना
×			०		

(६) कहरवा ताल—मात्रा ४

विभाग २, ताली १ पर और खाली ३ पर

धागि	नति	नक	धिं
×		०	

कुछ विद्वान इसे आठ मात्राओं का मानते हैं। इसीलिये ४ विभाग ताली १, ३ ७ पर और खाली ५ पर मानते हैं।

धा	गि	न	ति	न	क	धिं	—
×		२		०		३	

(७) घुमाली ताल—मात्रा ८

विभाग ४, ताली १, ३, ७ पर और खाली ५ पर

धिं	धिं	धा	तिं	तृक	धिं	धागे	तृक
×		२		०		३	

अथवा

धा	धिं	ना	तिं	त्रक	धिं	धागे	त्रक
×		२		०		३	

(८) रूपक ताल—मात्रा ७

विभाग ३, और ताली १, ४ और ६ पर

ती ती ना | धी नी | धी ना

× २ ३

नोट:—कुछ विद्वान ताल देने में प्रथम मात्रें पर ताली के स्थान पर खाली देते हैं ; किन्तु क्रियात्मक रूप में गत अथवा गीत के सम से ही रूपक ताल बजाना प्रारम्भ करते हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि यद्यपि ऐसे विद्वान मौलिक रूप में प्रथम मात्र पर खाली मानते हैं तथापि क्रिया में उस पर सम मानते हैं।

---

(९) तीवरा ताल—मात्रा ७

विभाग ३, ताली १, ४, और ६ पर

धा दिं ता | तिट कत | गदि गन

× २ ३

---

(१०) सूल अथवा सुरफाक ताल—मात्रा १०

विभाग ५, ताली १, ५, ७ पर और खाली ३ तथा ६ पर

धा धा | दिं ता | किट धा | तिट कत | गदि गन

× ० २ ३ ०

अथवा

धिं धिं | ता तिरकिट | धिं धिं | धागे तिरकिट | ती ना।

× ० २ ३ ०

---

(११) ताल कव्वाली—मात्रा ८

विभाग ४, ताली १, ३, ७ पर और खाली ५ पर

धा धिं	धिं धा	तिं तिं	धा धा
×	२	०	३

कुछ विद्वान कहरवा, धुमाली तथा कव्वाली को चार-चार मात्राओं का तथा दो-दो विभाग का मानते हैं।

---

(१२) खेमटा ताल—मात्रा १२

विभाग ४, ताली १, ४, १० और खाली ७ पर

धा टे धी	ना ती ने	ता टे धी	ना ती ने
×	२	०	३

---

(१३) झूमरा ताल—मात्रा १४

विभाग ४, ताली १, ४, ११ और खाली ८ पर

धिं ऽधा तिरकिट | धिं धिं धागे तिरकिट | ति ऽता तिरकिट

×   २

| धिं धिं धागे तिरकिट

---

(१४) दीपचंदी ताल—मात्रा १४

विभाग ४, ताली १, ४, ११ पर और खाली ८ पर

धा धिं ऽ	धा धा तिं ऽ	ता ति ऽ	धा धा धिं ऽ
×	२	०	३

अथवा

धा धिं ऽ	धा गे तिं ऽ	ता तिं ऽ	धा गें धिं ऽ
×	२	०	३

दीपचंदी को चाचर भी कहते हैं।

---

(१५) आड़ा चारताल—मात्रा १४

विभाग ७, ताली १, ३, ७ और ११ पर तथा खाली ५, ६, १३ पर

धिं तिरकिट	धी ना	तू ना	क त्ता	तिरकिट धी	ना धी	धी ना
×	२	०	३	०	४	०

---

(१६) धमार ताल—मात्रा १४

विभाग ४, ताली १, ६, ११ पर और खाली ८ पर

क धि ट धि ट	धा ऽ	ग दि न	दि न ता ऽ
×	२	०	३

---

(१७) तिलवाड़ा अथवा विलंबित तीनताल

विभाग ४, ताली १, ५ और १३ पर तथा खाली ६ पर

धा तिरकिट धिं धिं	धा धा तिं ति	ता तिरकिट धिं धिं	धा धा धिं धिं
×	२	०	३

अथवा

धा	तिरकिट	धिं	नधि	ना	ना	तिं	ति	ता	तिरकिट	धिं	नधि			
×				२				०						
												ना ना धिं धिं		
												३		

---

(१८) अद्धा—मात्रा १६

विभाग ४, ताली १, ५, १३ और खाली ६ पर (तीन ताल के समान)

धा	धिं	ऽ	धा	धा	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ	ता	ता	धिं	ऽ	धा
×				२				०				३			

---

(१६) जत—मात्रा १६

विभाग ४, ताली १, ५, १३ और खाली ६ पर

धा	ऽ	धिं	ऽ	धा	धा	तिं	ऽ	ता	ऽ	तिं	ऽ	धा	धा	धिं	ऽ
×				२				०				३			

---

(२०) टप्पा—मात्रा १६

विभाग, ४ ताली १, ५, १३ पर और खाली ६ पर

धा	धिं	ऽता	धिं	धा	धिं	ऽता	धिं	ता	कत	ऽक	ऽत	ना	धिं	ऽत	धिं
×				२				०				३			

अथवा

कधिं	ऽ	धा	ऽग	धा	धिं	ता	ऽ	कति	ऽ	ता	ऽक	धा	धिं	धा ऽ
×				२				०				३		

अथवा

धिं ऽ धा ऽग	धा धिं ता ऽकड	तिं ऽ ता ऽक	धा धिं धा ऽकड़
×	२	०	३

(२१) पंजाबी—मात्रा १६

विभाग ४, ताली १, ५, १३ और खाली ६ पर

धा ऽधी ऽक धा	धा ऽती ऽक ता	ता ऽधी ऽक धा	धा धधि ऽध ना
×	२	०	३

(२२) फरोदस्त ताल—मात्रा १४

विभाग ७, ताली १, ५, ६, ११ और १३ पर तथा खाली ३, और ७ पर

धिं धिं	धागे तिरकिट	तू ना	क त्ता	धिन कधा	तिरकिट धिन	कधा तिरकिट
×	०	२	०	३	४	७

(२३) रुद्रताल—मात्रा ११

ताली १, ३, ४, ५, ७, ८, ९ और १० पर तथा खाली २, ६ और ११ पर

धा	तत्	धा	तिरकिट	धी	ना	तिरकिट	तू	ना	क	त्ता
×	०	२	३	४	०	५	६	७	८	०

(२४) कुम्भ ताल—मात्रा ११

विभाग ११, ताली १, ३, ४, ८, ६, १० पर तथा २, ६, ११ पर खाली

धा	धिं	तिट	कत	धा	धिं	नक	तिट	कत	गदि	गन
×	०	२	३	४	०	५	६	७	८	०

(२५) पश्तो ताल—मात्रा ७

विभाग ३, ताली १, ४, ६ पर

तिं ऽ नक	धिं ऽ	धा गे
×	२	३

अथवा

त क धिं	धा धा	धा धिं
×	२	३

अथवा

त क धिं	धा धा	तिं ऽ
×	२	३

(२६) गजझंपा ताल—मात्रा १५

विभाग ४, ताली १, ५, १२ और खाली ६ पर

धा धिन नक तक	धा धिन नक तक	तिन नक तक	तिटि कट गदि गन
×	२	२	३

(२७) छोटी अथवा पंचम सवारी—मात्रा १५

विभाग ४, ताली १, ४, १२ पर और खाली ८ पर

धी ना धीधी | कत धीधी नाधी धीना | ती ऽ कड़ तीना
× | २ | ०

तिरकिट तूना | कत्ता धीधी नाधी धीना
| ३

अथवा

धी ऽ ऽ ना ऽ कड़ धिं ऽ ऽ ना कड़ | धिं नत धिना तीना
× | २

| तिं तीना तिरकिट, तूना किड़नग | कत्ता धीधी नाधी धीना
| ० | ३

अथवा

कुछ विद्वान दूसरी ताली चौथी मात्रा के स्थान पर पाँचवीं मात्रा पर मानते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य ताली, खाली और विभागों में कोई अन्तर नहीं करते।

धिंऽतिर किट, धिं ना ऽ ता ऽ | धी धी नाधी धीना
× | २

तीना तीना त्रक तूना किड़नग | कत्ता धीधी नाधी धीना
० | ३

—×—

(२८) बड़ी सवारी—मात्रा १६

विभाग ८, ताली १, ५, ६, ११, १३ और खाली ३, ६, तथा १५ पर।

धिं धिं	धा तिट	ना किट	नागे तू ना	क त्ता धी ना	धी धी ना धी
×	०	२	०	३	४

नागे तिरकिट	तूना कत्ता
५	०

अथवा

धी ना	धी ना	धीधी धीना	धीधी धीना	ता ऽ त्रक तूना
×	०	२	०	३

ता ऽ त्रक तूना	कत्ता त्रकधिन	गिन धागे नधा, तिरकिट
४	५	०

---

(२९) शिखर ताल—मात्रा १७

विभाग ५, ताली १, ५, ६, १२ और १४

धा त्र क धि न न क	थुं गा धि न न क	धु म कि ट त क
×	२	३

घे त धा	ति ट क त ग दि ग न
४	५

---

(३०) मत्ततال—मात्रा १८

विभाग ६, ताली १, ५, ७, ११, १३ और १५ पर तथा खाली ३, ६ और १७ पर

धा ऽ	धि ड	न क	धि ड	न क	ति ट	क त	ग दि	ग न
×	०	२	३	०	४	५	६	०

अथवा

धी ऽ	ना ऽ	धी तिरकिट	धी ना	तू ना	क त्ता	तिरकिट धिं	ना धी	धी ना
×	०	२	३	०	४	५	६	०

---

(३१) लक्ष्मी ताल—मात्रा १८

धिं	ते तु	धे तु	धे तु	दिं	ता	ति ट	क त	धा	दिं	ता
×	२	३	०	४	५	६	०	७	८	६

धु म	कि ट	धु म	ति ट	क त	ग दि	ग न
१०	११	१२	१३	१४	१५	०

अथवा

धिंना	धिंधा	तिरकिट	धिंना	धिंधा	तिरकिट	धाधा
×	२	३	०	४	५	६

तिरकिट	धाधा	तिरकिट	धिंना	धिंधा	तिरकिट
०	७	८	६	१०	११

तुना	किड़नग	तागे	ता ऽ	तिरकिट
१२	१३	१४	१५	०

---

(३२) सरस्वती ताल—मात्रा १८

विभाग ५, ताली १, ५, ७, ११ और १५ पर

धा ऽ धिं न्ना	धे न	कि ट धे न	धा गे तिट	धा गे तु न्ना
×	२	३	४	५

---

(३३) ब्रह्मताल—मात्रा २८

विभाग १४, ताली १, ५, ७, ११, १३, १५, १६, २१, २३ और २५ पर तथा खाली ३, ६, १७ और २७ पर

धा धिं	धिं धा	तृक धिं	धिं धा	ती ती	ना ती	ती ना
×	०	३	३	०	४	५

ती ना	तू ना	क त्ता	धी ना	धागे नधा	तृक धिं	गदि गन
६	०	७	८	६	१०	०

---

(३४) गणेश ताल—मात्रा २१

विभाग १०, ताली १, ५, ६, १०, ११, १२, १६, १७, १८ तथा १६ पर

धा ता दिं ता	कुत	तिट धा दिं ता	कुत	तिट	ता धागे दिं ता
×	२	३	४	५	६

धागे	ता	तिट	क्रत गदि गन
७	८	६	१०

---

(३५) बसन्त ताल—मात्रा १७

विभाग ५, ताली १, ३, ६ और १० पर तथा ताली १४ पर

धिं ना	धिं धिं ना	धिं तृक धी ना	धिं धिं ना धिं	धी ना धी ना
×	२	३	४	०

कुछ पारिभाषिक शब्द

लय—इसके दो अर्थ है संकुचित और व्यापक। संकुचित अर्थ में समय की सामन गति को लय कहते हैं। अतः इस अर्थ में समय की असमान गति लय न कहलावेगी। लेकिन हम व्यहार में यह कहा ही करते हैं कि अमुक लय ठीक है और अमुक लय गलत है इसलिये लय के व्यापक अर्थ में समान और असमान दोनों प्रकार की गति लय कहलाती है।

गायन, वादन अथवा नृत्य में कोई न कोई लय अवश्य रहती है। साधारणतया यह लय तीन प्रकार की होती है, धीमी, तेज तथा दोनों के बीच की लय। शास्त्रकारों ने इनका नामकरण क्रमशः इस प्रकार किया है, विलम्बित, द्रुत और मध्य। मसीतखानी गतें और बड़े ख्याल विलम्बित-लय में तथा छोटे ख्याल और रज़ाखानी गतें मध्य तथा द्रुत दोनों लयों में गाई बजाई जाती हैं। साधारणतया मध्य-लय एक सेकन्ड के बराबर होती है। किन्तु गायक को इसकी गति घटाने-बढ़ाने की पूरी स्वतंत्रता रहती है। द्रुत-लय मध्य-लय का दूना तथा विलम्बित-लय मध्य-लय का आधा माना जाता है, किन्तु क्रियात्मक संगीत में इस प्रकार का कोई अन्तर नहीं मिलता।

मात्रा—संगीत में समय नापने के लिये मात्रा का विधान किया गया है। जिस प्रकार वज़न नापने के लिये मन, सेर, छटाँक, लम्बाई-चौड़ाई मापने के लिये गज, फिट, इन्च तथा समय नापने के लिये घंटा, मिनट, सेकन्ड बनाये गये हैं, इसी प्रकार संगीत में समय नापने के लिये मात्रा बनाया गया है। दो तालियों के बीच के समय को एक मात्रा कहते हैं। मात्रा के छोटे अथवा लम्बे होने से लय के प्रकार बनें

हैं। जब मात्रा बहुत बड़ी होती है अर्थात जब दो तालियों के बीच का समय काफी लम्बा होता है तो वह विलम्बित, जब समय काफी छोटा होता हैं तो द्रुत और जब दो तालियों के बीच का समय साधारण होता है तो वह मध्य-लय कहलाती है। इसलिये व्यवहार में लय आवश्यकतानुसार छोटी-बड़ी कर ली जाती है।

ताल—विभिन्न मात्राओं के विभिन्न समूहों को ताल कहते हैं। मात्रायें केवल लय अथवा समय की गति दिखातीं हैं, लेकिन गायन और वादन में केवल इतने से ही काम पूरा नहीं होता। इसलिये उनकी विविध समूहों से तालों की रचना हुई। अतः ताल समय के गति की माप है। ताल अनेक मात्राओं के होते हैं, जैसे—दस मात्रे का झपताल, पन्द्रह मात्रे का गजझंपा ताल, सोलह मात्रे का तीन-ताल इत्यादि। उत्तरी भारतीय संगीत के तालों की विशेषता यह है कि कुछ तालों में मात्राओं तथा विभाग आदि की समानता होते हुये भी वे एक दूसरे से भिन्न होती हैं, जैसे एकताल और चारताल अथवा झपताल और सूल ताल इत्यादि।

विभाग—प्रत्येक ताल को कुछ छोटे-छोटे भागों में विभाजित किया गया है, जिन्हें विभाग कहते हैं। प्रत्येक विभाग की प्रथम मात्रा पर सम, ताली, अथवा खाली अवश्य रहती है। विभाग अधिकतर दो, तीन, चार अथवा पांच मात्राओं का होता है। किसी भी ताल के विभाग की संख्या उस ताल के बोल पर आधारित होती है। ताल को उतने ही भागों में जितने कि उसके विभाग माने गये हैं, विभाजित किये जा सकते हैं, जैसे झपताल के बोल हैं, धीना धी धी ना, ती ना धी धी ना। इसके चार भाग हो सकते हैं (१) धी ना (२) धी धी ना (३) ती ना और (४) धी धी ना। अगर चार से अधिक माना जाय तो इसकी स्वाभाविकता नष्ट हो जावेगी।

विभाग का मुख्य प्रयोजन यह है कि गायक अथवा वादक को ताल देते समय यह पता चलता रहे कि वह किसी खास समय पर ताल

के किस मात्रे पर है। इसलिये किसी ताल में अत्यधिक विभागों का होना अथवा एक-एक मात्रे का विभाग होना उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति में बाधक होता है। कुम्भ और रूद्र ताल ऐसे ही ताल हैं जिनमें दोनों प्रकार की बुराइयाँ है। इनमें ११-११ मात्रायें हैं और उतने ही विभाग हैं।

सम, ताली और खाली—किसी ताल को दो प्रकार से दिखाया जा सकता है, तबले अथवा पखावज पर बजाकर के अथवा हाथों के विशिष्ट इशारों द्वारा। दूसरे प्रकार में दो प्रकार की क्रियायें होती हैं, ताली बजाना तथा हाथ किसी एक ओर हिलाकर खाली दिखाना। ताली और खाली सदैव विभाग की प्रथम मात्रा पर होती है। पहली ताली जो कि प्रथम मात्रा पर होती है, सम कहलाती है। एक ओर सम पर गाने अथवा बजाने में बहुत जोर पड़ता है और दूसरी ओ रउसी स्थान से ताल का ठेका प्रारम्भ होता है। पहली मात्रा के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर जहां हाथों के आघात द्वारा ध्वनि करते हैं, ताली कहलाती है।

विभाग की प्रथम मात्रा जहाँ ताली न देकर केवल हाथ हिला दिया जाता है, खाली कहलाती है। अधिकतर ताल के बीचो-बीच एक खाली होती है और उस स्थान पर ठेके में ता या ती का वर्ण प्रयोग होता है।

बोल—तबले के वर्णों के किसी भी समूह को बोल कहते हैं। वर्णों का समूह छोटा हो या बड़ा अथवा किसी भी लय का हो, बोल कहलाता है। अतः कायदा, पल्टा, रेला, गत, परन, मुखड़े आदि सभी बोल कहे जा सकते हैं।

टुकड़ा—जिस प्रकार गायन में तान, तंत वाद्यों जैसे सितार में तोड़ों का प्रयोग होता है उसी प्रकार तबले में टुकड़ों का प्रयोग होता है। व्यापक अर्थ में वर्णों के किसी भी निश्चित समूह को टुकड़ा कहते हैं। अतः इस अर्थ में टुकड़ा और बोल पर्यायवाची कहे जा सकते

हैं। लेकिन संकुचित अर्थ में वे बोल जो निश्चित होते हैं तथा जिनमें कायदे आदि की तरह विस्तार संभव नहीं होता है, टुकड़े कहलाते हैं। टुकड़े अधिकतर एक से तीन आवर्तन तक होते हैं। इनमें वर्ण, लय अथवा किसी भी प्रकार का बन्धन नहीं होता। कोई भी वर्ण-समूह किसी भी लयकारी में तथा तिहाई-युक्त अथवा बिना तिहाई के प्रयोग किया जा सकता है।

ठेका—किसी भी ताल में उसकी प्रत्येक मात्रा में बद्ध तबले के विभिन्न वर्णों को ठेका कहते हैं। ठेका एक आवृत्ति का होता है। व्यवहार में ठेका के स्थान पर 'बोल' शब्द का भी प्रयोग होता है। प्रचलित तालों के ठेके उनकी मात्राओं के साथ-साथ निश्चित हैं। उदाहरणार्थ झपताल में १० मात्रायें होती हैं और उसका ठेका है,

धी ना	धी धी ना	ती ना	धी धी ना
×	२	०	३

आवृत्ति—किसी भी ताल में उसकी प्रथम मात्रा से उसकी अंतिम मात्रा तक का क्षेत्र आवृत्ति, आवर्तन अथवा आवर्त कहलाता है। जब कभी तबले पर किसी ताल का ठेका बजाया जाता है तो उसे सर्वप्रथम प्रारम्भ से अंत तक एक बार बजाते हैं। इसके बाद फिर से पहली मात्रा से प्रारम्भ करते हैं। इसका यह अर्थ होता है कि उस ताल की एक आवृत्ति समाप्त हुई और दूसरी प्रारम्भ हो रही है। इस प्रकार प्रत्येक दस मात्रे के बीत जाने पर झपताल की एक आवृत्ति समाप्त होगी।

संगत—आजकल तबले का प्रयोग दो प्रकार से दिखाई पड़ता हैं,—मुक्त वादन अथवा सोलो वादन में तथा संगत में। संगत का अर्थ हैं साथ देना। गायन और वादन के साथ तबला बजाने की क्रिया संगत कहलाती है। संगत में तबलिया आवश्यकतानुसार गायन और वादन की लयकारी उसी समय तबले पर दिखाने का प्रयत्न करता है। संगत दो प्रकार से होती है, एक तो गायक अथवा वादक के साथ-साथ एक ही लयकारी दिखाना। इसमें तबलिया गायक अथवा वादक का

अनुसरण करता हुआ आगे बढ़ता है। दूसरे गायक अथवा वादक अपने एक विशिष्ट स्वर-समुदाय के बाद तबलिये को मौका देता है और वह उसकी लयकारी को उसी समय तबले पर दिखाता है। इस प्रकार की संगत प्रथम प्रकार से कुछ निकृष्ट समझी जाती है। इसका कारण यह है कि प्रथम प्रकार की संगत दूसरे की तुलना में सरल होता है। दोनों प्रकार की संगतों का मुख्य ध्येय गायन अथवा वादन को अधिक आकर्षक बनाना होता है; इसलिये संगत गायन तथा गायक की रुचि का होना चाहिये।

किस्म—किसी भी ताल का स्वरूप न बदलते हुये उसके ठेके को भिन्न-भिन्न प्रकार से बजाने को किस्म कहते हैं। उदाहरणार्थ दादरा के धा धी ना और धा तू ना के स्थान पर धा धी नाना और धा तू नाना कर देने से यह दादरे की एक किस्म हो जावेगी।

तिहाई—वर्णों के उस छोटे समूह को तिहाई कहते हैं, जिसे सम पर लाने के लिये पूरा-पूरा तीन बार बजाया जाता हो। इसे तीहा भी कहते हैं। तीहा अथवा तिहाई दो प्रकार की होती है (१) दमदार —वह तिहाई है जिसमें दो निश्चित स्थानों पर कुछ ठहराव होता है। पहला ठहराव उस वर्ण-समूह की पहली आवृत्ति के बाद होता है और दूसरा, उसकी दूसरी आवृत्ति के बाद और तीसरा सम पर आ गिरता है अथवा तीसरे ठहराव के बाद सम पर आता है। (२) बेदमदार—जब किसी बोल की आवृति तीन बार हो, किन्तु बीच में ठहराव न हो।

मुखड़ा और मोहरा—इन शब्दों के अर्थ में विद्वानों में कई मत पाये जाते हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार ज़ोरदार छोटे टुकड़े मुखड़ा और मुलायम छोटे टुकड़े मोहरा कहलाते हैं। दूसरे मतानुसार कोई भी छोटे टुकड़े (तिहाई के साथ अथवा बिना तिहाई के) जो सम पर मिलने के लिये प्रयोग किये जाते हैं मुखड़ा अथवा मोहरा कहलाते हैं। अतः इस मतानुसार मुखड़ा और मोहरा एक दूसरे के पर्य्यायवाची शब्द कहे जा सकते हैं। तीसरे मतानुसार छोटे

उठान जो गत अथवा गीत के बिल्कुल प्रारम्भ में सम से मिलने के लिये बजाये जाते हैं मुखड़ा तथा छोटे टुकड़े जो गीत और गत के बीच में बजाये जाते हैं, मुहरा कहलाते हैं।

वास्तव में मुखड़ा गायन का और मोहरा तबले का शब्द है। गायकों द्वारा यह सुनने में आता ही है कि इस गीत का मुखड़ा चार अथवा पाँच मात्राओं का है, किन्तु ऐसा कभी भी सुनने में नहीं आता कि गीत का मुहरा पाँच मात्राओं का है। इसके विपरीत तबलियों द्वारा यह सुनने में आता है कि अमुक मोहरा बहुत सुन्दर हैं। दोनों का भाव लगभग समान होने का कारण कुछ लोग तबले में दोनों को मोहरे के अर्थ में प्रयोग करने लगे हैं।

कायदा—वर्णों के उस निश्चित् और नियमबद्ध समूह को कायदा कहते हैं, जिसमें यथेष्ट विस्तार हो सकता हो। सोलो-वादन में इसको बहुत महत्व दिया जाता है। कायदे के निम्नलिखित लक्षण होते हैं।

(१) कायदे की रचना ताल के ताली-खाली के अनुसार होती है। कायदे का प्रथम भाग भरे हुये बोलों का होता है और दूसरा अथवा अन्तिम भाग खाली बोलों का।

(२) कायदा अधिकतर एक आवृत्ति का होता है, लेकिन कुछ कायदे एक से अधिक आवृत्ति के भी होते हैं।

(३) कायदे के बोल इस प्रकार के होते हैं कि उनका खूब विस्तार संभव हो सकता है और विभिन्न लयकारियाँ भी दिखाई जा सकती हैं।

(४) जैसा कि इसका नाम कायदा है, वैसा ही इसका गुण है। इसके उचित अभ्यास से हाथ कायदे का हो जाता है।

नीचे कायदे का एक नमूना दिया जा रहा है।

धा धा तिर किट	धा धा तू ना	ता ता तिर किट	धा धा तू ना
×	२	०	३

पलटा—ऊपर हम यह बता चुके हैं कि किसी भी कायदा का विशेष लक्षण यह है कि वह विस्तार के योग्य होता है। विस्तार इस तरह होता है कि कायदे के बोलों को उलट-पुलट कर उसमें इस प्रकार की नई रचनायें बनाते हैं कि ताल का रूप बिगड़ने नहीं पाता। इन्हीं रचनाओं को पलटा कहते हैं। इनके निम्नलिखित लक्षण हैं।

(१) पलटों में उसके कायदे के बोलों का ही प्रयोग होता है जैसे उपर्युक्त कायदे के पलटों में केवल तिरकिट, धा तू ना वर्णों का प्रयोग होगा।

(२) कायदे के समान पलटे के भी दो भाग होते हैं। पहला भाग भरे हुए बोलों का और दूसरा भाग खाली बोलों का होता है।

(३) पलटे के दोनों भागों का संतुलन, मात्रायें और बोल (खाली बोलों को छोड़कर) समान होते है अन्यथा सही पलटा नहीं कहा जावेगा।

उदाहरण के लिये ऊपर लिखे हुये कायदे के कुछ पलटे नीचे दिये जा रहे हैं।

(१) धा धा तिरकिट धाधा तिरकिट | धाधा तिरकिट धाधा तूना
×   २

ताता तिरकिट ताता तिरकिट | ताता तिरकिट धाधा तूना
०   ३

(२) धाधा तिरकिट धा, तिर किट, धा | धाधा तिरकिट धाधा तूना
×   २

ताता तिरकिट ता,तिर किट, ता | ता ता तिरकिट धाधा तूना
०   ३

(३) धाधा तिरकिट तिरकिट धा, तिर | किट,धा तिरकिट धाधा तूना
×   २

ताता तिरकिट तिरकिट ता,तिर | किट,ता तिरकिट धाधा तूना

० ३

गतः—तबले में बोलों के एक खास प्रकार के समूह को गत कहते हैं। यह तिहाई युक्त बहुत कम तथा तिहाई-रहित बहुत अधिक हुआ करता है। विशेष अर्थ में यह अधिकतर एक, दो अथवा अधिक आवृत्तियों का होता है। गत में इस प्रकार का विस्तार नहीं किया जाता, जैसा कि कायदे में करते हैं, बल्कि दुगुन, चौगुन आदि करके उसे समाप्त कर देते हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार व्यापक अर्थ में तिपल्ली, चौपल्ली, गत परन आदि सभी गत कहलाती हैं।

गतें दो प्रकार की होती हैं (१) शुद्ध लयकारी की गतें—इनमें एक ही लयकारी के बोल प्रारम्भ से अंत तक होते हैं (२) मिश्रित लयकारी की गते—इनमें प्रारम्भ से अंत तक के बीच में कई प्रकार की लयकारियां होती हैं। इस प्रकार की गतें पूरब-बाज में अधिक दिखाई पड़ती हैं। दोनों प्रकार की गतें तिहाई युक्त अथवा तिहाई रहित होती हैं।

गत-कायदा—वह गत जिसमें कायदे के समान कुछ विस्तार संभव हो गत कायदा कहलाता है, क्योंकि कायदा का विशेष लक्षण है विस्तार योग्य होना। इसके रेले नहीं बजाये जाते।

तिपल्ली—यह मिश्र गतों का एक प्रकार है। इसमें लयकारी की प्रधानता रहती है। तिपल्ली अधिकतर एक या दो आवृत्ति की होती है। इसमें तीन प्रकार की लयकारियाँ होती हैं, शायद इसीलिये इसका नामकरण तिपल्ली हुआ है।

चौपल्ली—तिपल्ली के समान चार विभिन्न लयकारियों वाला गत चौपल्ली कहलाता है। यह भी मिश्र गतों का एक प्रकार है।

चक्करदार गत—वह गत जो तिहाई के समान तीन बार बजाने पर सम पर आवे चक्करदार गत कहलाती है। इसमें तिहाई

के समान बीच में दो ठहराव होता है। पहला ठहराव पहले खंड के समाप्त होने पर और दूसरा दूसरे खंड के समाप्त होने पर होता है। तीसरा खंड सम पर आ गिरता है। इसलिये कुछ विद्वान इसे तिहाई का एक प्रकार मानते हैं।

परन—खुले व ज़ोरदार बोलों का वह समूह जो दो, तीन अथवा अधिक आवृत्तियों का होता है तथा जिसमें कुछ बोलों के समूह दोहराते हुये चलते हैं, परन कहलाता है। परन पखावज की चीज है, इसीलिये यह दादरा और कहरवा तालों में नहीं बजाया जाता। तद्यपि आजकल पखावज का प्रचार बहुत कम हो गया है, फिर भी परनों का प्रयोग तबले पर होता है और वह भी पूरब-घराने में। दिल्ली और अजराडे के घरानों में इसे महत्वपूर्ण स्थान नहीं प्राप्त है। परन का प्रयोग तबला सोलों में होता है, संगत में नहीं। इनमें निम्नलिखित प्रकार के बोलों का अधिक प्रयोग होता है।

धेत् धेत्, तगेन्न, धागे तेटे, तागे तेटे, क्ड़धा तिट, धेटे धेटे इत्यादि।

उठान—यह खुले अथवा ज़ोरदार बोलों का वह समूह है जो नाच के प्रारम्भ में तथा पूरब बाज के तबला सोलों के प्रारम्भ में बजाई जाती है। उठान नाम ही ऐसा है जो प्रारम्भ का बोध कराता है। यह सर्व प्रथम बराबर की लय में और उसके बाद दून की लय में एक साथ बजाई जाती है। उठान परन का एक प्रकार है। यह किसी भी मात्रे से बजाई जा सक़ती है।

लग्गी—यह एक प्रकार से दादरा और कहरवा ऐसे चंचल तालों का कायदा कहा जा सकता है। क्योंकि इसमें कायदे के समान विस्तार किया जाता है। इसलिये दादरा और कहरवा में प्रयोग किया जाने वाला, एक मुख्य प्रकार के वर्णों का वह समूह जिसमें विस्तार की गुँजाइश हो लग्गी कहलाती है। लग्गी ठुमरी में जब

कि कहरवा की लय आ जाती है तथा भजन इत्यादि में लगाई जाती है। विस्तार के लिये यह आवश्यक नहीं है कि लग्गी में आये हुये बोलों द्वारा ही विस्तार हो, अपितु गायक के बोल बनाव के आधार पर लग्गी का विस्तार होता है। गायक जिस प्रकार का बोल बनाता है तबलिया उसी प्रकार की लग्गी से संगत करता है। तीन ताल में भी कभी-कभी लगी बजाई जाती हैं।

बाँट—जिस प्रकार कायदे के विस्तार को पलटा कहते हैं उसी प्रकार लगी के विस्तार को बाँट कहते हैं।

पेशकारा—एक विशिष्ट प्रकार के कायदे को पेशकारा कहते हैं। इनमें भी अच्छी प्रकार से विस्तार होता है तथा लय-बाँट का विशेष बन्धन नहीं रहता। तबलिया बीच-बीच में कई प्रकार का परिवर्तन कर पुनः अपने स्थान पर आ जाता है। इसकी चाल कुछ टेढ़ी, तथा डगमगाती हुई चलती है इसलिये इसका वास्तविक आनन्द द्रुत गति में नहीं आता है। यह अधिकतर बराबर और दून की लय में बजाया जाता है। दिल्ली और अजराड़ा घराने में इसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जिस प्रकार पूरब बाज में तबला-सोलो उठान से प्रारम्भ करते हैं उसी प्रकार दिल्ली घराने में पेशकारा से प्रारम्भ करते हैं। पेशकारे में धीक्ड़ धिंता के प्रयोग की प्रधानता रहती है।

चलन अथवा चाला—पेशकारे और चलन में कोई अंतर नहीं है। कुछ घरानों में बजाये जाने वाले पेशकारे, चलन अथवा चाला कहलाते हैं।

लड़ी—द्रुत लय में बजाने जाने वाली लग्गी लड़ी कहलाती है। लड़ी के शाब्दिक अर्थ हैं पंक्ति अथवा कतार। इसलिये लग्गी के किसी हिस्से को अथवा पूरी लग्गी को द्रुतलय में इस प्रकार बजाने से जब कि लग्गी की पंक्ति सी बन जाये, लड़ी कहलाती है।

तबले का जन्म

तबले की उत्पत्ति के विषय में अनेक मत हैं। अधिकांश विद्वानों के मतानुसार अलाउद्दीन खिजली के समय के अमीर खुसरो ने तेरहवीं शताब्दी में तबले का आविष्कार किया। आविष्कार इस रूप में किया कि पखावज को बीच से दो भागों में विभाजित कर उसे आधुनिक तबले का रूप दे दिया। हाँ, इतना निश्चित है कि तबले का वास्तविक रूप देने के लिए उन्हें पखावज के दोनों भागों में कुछ परिवर्तन अवश्य करना पड़ा होगा। इस मत के अनुयायी यह प्रमाण देते हैं कि आज भी पंजाब में पखावज के समान तबले के डग्गे में आँटा लगाकर उसे प्रयोग में लाते हैं। कुछ विद्वानों का यह मत है कि तबला प्राचीन काल में प्रचलित 'दुर्दर' नामक वाद्य का आधुनिक रूप है। कुछ विद्वानों का यह विचार है कि तबले की उत्पत्ति अरबी के 'तब्ल' से हुई, जिसका अर्थ नक्कारा होता है।

तबले का आविष्कार किसी भी काल में हुआ हो तथा आविष्कारक कोई भी रहा हो, किन्तु उपलब्ध इतिहास द्वारा इतना तो निश्चित है कि सर्वप्रथम दिल्ली के सिधार खाँ अथवा सिद्धार खाँ एक तबलिये के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनके ही द्वारा दिल्ली घराने की तथा अन्य सभी घरानों की नींव पड़ी। हम आगे चलकर यह बतायेंगे कि किस प्रकार दिल्ली घराने से अन्य घरानों का जन्म हुआ। इसलिए अगर हम सिधार खाँ को तबले का प्रवर्तक कहें तो अनुचित न होगा।

तेरहवीं शताब्दी के पूर्व ध्रुपद गायन प्रचलित था। ध्रुपद गम्भीर प्रकृति का होने के कारण उसके साथ पखावज अथवा मृदंग ऐसे गम्भीर वाद्य का प्रयोग आवश्यक था। धीरे-धीरे उत्तरी भारत की सामान्य परिस्थित परिवर्तित होती गई और शासकों की प्रवृत्तियाँ

गम्भीरता पर न रहकर चंचलता तथा जीवन के छिछले अंगों पर जाने लगी। फलस्वरूप जनरुचि और तत्पश्चात् संगीत भी परिवर्तित हुई। ध्रुपद का स्थान धीरे-धीरे ख्याल गायन ने ले लिया। ख्याल की संगत के लिए पखावज अनुपयुक्त हो गया, इसलिये इस वाद्य में भी परिवर्तन वाँछनीय हो गया। अतः तबले का जन्म हुआ। एक ओर ख्याल गायन का आविष्कार हुआ (जौनपुर के सुल्तान हुसेन शर्की ने विलंबित ख्याल और अमीर खुसरो के कव्वाली के आधार पर छोटे ख्याल का जन्म हुआ) और दूसरी ओर तबले का। इस प्रकार हम देखते हैं कि तबले और ख्याल गायन का जन्म लगभग एक साथ हुआ और दोनों का विकास एक दूसरे पर आश्रित रहा।

तेरहवीं शताब्दी के पूर्व पखावज के साथ-साथ अन्य अवनद्ध वाद्यों का भी प्रचार था। रामायण और महाभारत में मृदंग, डिमडिम, भेरी, दुंदभी, पणव, घट, आदि अवनद्ध वाद्यों का नाम मिलता है। इतना ही नहीं वैदिक काल में भी भू-दुदुंभी डमर, ढोल, मर्छल, भेरी, इत्यादि वाद्यों का उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है। ऐसा कहा जाता है कि आज भी कलकत्ते के अजायबघर में २६० प्रकार के ढोल देखने को मिलते हैं। यह किंवदन्ती है कि एक बार शिव जी ने वृत्रासुर का बध कर आनन्द मग्न हो तांडव नृत्य करने लगे। उन्हीं के पुत्र गणेश जी ने उस राक्षस के खाल को एक भू-भाग में गड्ढा खोदकर मढ़ दिया और शिव जी के साथ संगत किया। इस किवदंती में कहां तक सत्य का अंश है बतलाना मुश्किल है, लेकिन इससे यह सिद्ध अवश्य होता है कि अति प्राचीन अथवा प्रागैतिहासिक काल में भी अवनद्ध वाद्यों का प्रयोग गायन, वादन अथवा नृत्य की संगत में होता था।

कुछ विद्वानों का यह मत है कि डमरू से मृदंग, मृदंग से पखावज और पखावज से तबले का आविष्कार हुआ। दक्षिण भारत में आज

भी मृदंग जिसे वे लोग मृदंगम कहते हैं प्रचलित है। वहां इसके अतिरिक्त अन्य अवनद्ध वाद्य जैसे मर्दलम, शुद्धमद्दलम आदि प्रचार में है। यहाँ पर एक बात जिसे हमारे अधिकांश पाठक जानते होंगे दोहरा देना आवश्यक होगा कि तबले का प्रचार केवल उत्तरी भारत में ही रहा है। दक्षिण भारत में जैसे मद्रास, मैसूर, कर्नाटक आदि इस वाद्य से लगभग अपरिचित हैं।

तबले के विभिन्न घराने और उनकी विशेषतायें

पीछे हम यह बता चुके हैं कि अधिकांश विद्वानों के मतानुसार अमीर खुसरो ने तेरहवीं शताब्दी में तबले का अविष्कार किया। राजाश्रय प्राप्त होने के कारण दिल्ली और उसके आस-पास यह कला विकसित हुई। जहाँ तक जानकारी प्राप्त हो सकी है उसके आधार पर सिधार खाँ प्रथम तबलिये थे। उनके बजाने की शैली जैसे विभिन्न वर्णों का प्रयोग तथा उनके निकालने की विधि, विशिष्ट प्रकार के बोलों का प्रयोग आदि ने एक विशिष्ट बाज का निर्माण किया जो कि 'दिल्ली बाज' के नाम से सर्वविदित हुई। सिधार खाँ के शिष्यों में से कुछ उसी स्थान पर रहे और कुछ भारत के अन्य भागों में फैले। ये लोग अपने साथ-साथ तबला बजाने की कला भी ले गये, जिसका प्रचार विभिन्न स्थानों पर किया। धीरे-धीरे- उनकी कला पर उनकी मनोभावों का, उस स्थान के सामयिक वातावरण का प्रभाव पड़ा और फलस्वरूप कुछ समय बाद उनकी वादन शैली अथवा बाज 'दिल्ली-बाज से भिन्न हो गई। यह परिवर्तन बिल्कुल स्वाभाविक था। इस प्रकार तबले के विभिन्न बाजों का जन्म हुआ और अगर हम सिधार खाँ को जन्मदाता कहें तो न्याय असंगत न होगा। एक ही बाज के शिष्य-परम्परा ने उस बाज के घराने का निर्माण किया। इस प्रकार जितने बाज हुये उतने ही घराने हुये जैसे दिल्ली-बाज, पंजाब-बाज, अजराडा-बाज और दिल्ली-घराना, पंजाब-घराना, अजराडा-घराना इत्यादि। अब हम तबले के विभिन्न घरानों पर अलग-अलग विचार करेंगे।

दिल्ली-घराना

यह तो पता ही है कि इस घराने का निर्माण तबले के प्रवर्तक उस्ताद सिधार खाँ और उनके शिष्यों द्वारा हुआ और दिल्ली घराने की वादन-शैली 'दिल्ली-बाज' कहलाती है। इस बाज में चाँटी और स्याही का काम अधिक होता है, इसीलिये इसे 'किनार का बाज' भी कहते हैं। इस बाज में दो अंगुलियो, तर्जनी और मध्यमांगुलि के बोलों का अधिक प्रयोग होता है। अतः इसके बोल कोमल और कर्णप्रिय होते हैं तिट, तिरकिट, धिन गिन, दिंगनग, घिड़नग दिनगिन आदि वर्ण-समूहों का प्रयोग होता है। तिट और तिरकिट केवल तर्जनी और मध्यमांगुलि (अंगूठे की ओर से दूसरी और तीसरी अंगुली) की सहायता से निकालते हैं। इस बाज में पेशकार, कायदा और रेले पर बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता है। नीचे दिल्ली बाज के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं।

कायदा

धाति	धागे	नधा	तिरकिट	|	धाति	धागे	तिन	गिन
×					०			
ताति	तागे	नता	तिरकिट	|	धाति	धागे	धिन	गिन
०					३			

रेला

धाऽ	ऽधा	घेडनग	दिंगनग	|	धा,तिर	किट,धा	घिडनग	तिंगनग
×					२			
ताऽ	ऽता	घेडनग	दिंगनग	|	ता,तिर	किट,ता	घिडनग	दिंगनग

कहा जाता है कि उस्ताद सिधार खाँ के तीन पुत्र थे। इन्हीं पुत्रों के वंशजों और शिष्यों ने दिल्ली-बाज को कायम रक्खा। सुप्रसिद्ध खलीफा उस्ताद नत्थू खां उस्ताद बोलीबख्श के पुत्र थे। नत्थू खाँ की मृत्यु कुछ ही वर्षों पूर्व हुई है। उस्ताद बोलीबख्श के प्रमुख शिष्य उस्ताद मुनीर खाँ थे जिनके शिष्य सुविख्यात अहमद जान थिरकुआ हैं। इनमें मुख्य विशेषता यह है कि इन्होंने दिल्ली-बाज के अतिरिक्त पूरब-बाज की विशेषताओं को भी सफलता पूर्वक अपनाया है। इसीलिये भारत के उच्चकोटि के तबलियों में इनका प्रमुख स्थान है। मेरठ के उस्ताद हबीब उद्दीन नत्थू खाँ के शिष्य हैं। उस्ताद गामी खाँ एक वयोवृद्ध तबलियाँ हैं जो आजकल बम्बई में रहते हैं। सुधार खां के तीसरे पुत्र के तीन पुत्र थे, मक्खू खां, मोदू खां और बख्शू खां। लखनऊ नवाब के आग्रह से मोदू और बख्सू खां दिल्ली से लखनऊ चले आये। इस तरह दिल्ली की कला लखनऊ चली आई और कुछ दिनों बाद थोड़ा परिवर्तित होने पर पूरब बाज के नाम से विख्यात हुई।

अजराडा-घराना

इस घराने की नींव दिल्ली घराने के उस्ताद सिताब खाँ के शिष्य कल्लू खाँ और मीरु खाँ ने डाली। कल्लू खाँ और मीरु खाँ दोनों भाई-भाई थे और मेरठ जिले के अजराडा गाँव में रहते थे। इसीलिये उनके बाज और घराने का नाम अजराडा पड़ा। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस घराने की आत्मा दिल्ली घराना ही है। अतः दिल्ली-बाज की सारी विशेततायें जैसे चाँटी की प्रधानता, पेशकारे, कायदे और रेले की प्रचुरता तथा परन और टुकड़ों की कमी अजराडे घराने में चली आई। इस घराने में उस्ताद मुहमदी बख्श उनके पुत्र चाँद खाँ तथा पौत्र काले खाँ अच्छे तबलिये हो चुके हैं। कल्लू खाँ के पुत्र हस्सू खाँ और पौत्र शम्भू खाँ थे। सुविख्यात उस्ताद हबीब

उद्दीन शम्भू खाँ के पुत्र हैं। हबीब उद्दीन की बाल्यावस्था में उनके पिता की मृत्यु हो जाने के कारण उन्होंने दिल्ली घराने के उस्ताद नत्थू खाँ से शिक्षा प्रारम्भ की। इस प्रकार इनका सम्बन्ध दिल्ली और अजराड़ा दोनों घरानों से है। हबीब उद्दीन संगत करने में बड़े प्रवीण हैं।

गत, कायदे और उनके पलटों की आड़लय इस घराने में अपना प्रमुख स्थान रखती हैं। इस घराने के दाहिने और बायें के बोल आपस में लड़ते हुये से चलते हैं। इसीलिये धेतक, धेनक, धातक, तिन्न, दिंग दिनगिन, धा घेड़नग आदि बोलों का अधिक प्रयोग होता है। इन बोलों के आड़लय कायदों में दिल्ली के समान अधिक विस्तार सम्भव नहीं है। यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि कठिन बोलों में विस्तार का स्थान कम होता है।

नीचे कुछ उदाहरण देखिये।

कायदा

धागे तिट धागे तिरकिट धिनगिन धागे तिट | धागे न धा
×

तिरकिट, धिट धागे, तिरकिट तिनगिन | तागे तिट
२ | ०

तागे, तिरकिट तिन गिन तागे तिट | धागे नधा तिरकिट धिट
३

धागे, तिरकिट धिन गिन

—×—

गत

धागेन	ते ऽ त	धागिन	धा |	धेतक	धिनक	धिनधि	नगिन
×				२			
धिनऽ	धा ऽऽ	धिन ऽ	धागिन |	धात्रक	धेकिट	धेनाति	नकिन
०				३			
धिनक	तिन्न	यागेति	रकिट |	तागेति	ट तागे	त्रकति	नगिन
×				२			
धि ऽन	धाऽधा	धिनधा	ऽ धिन |	धात्रक	धेकिट	धेनाधि	नगिन
०				३			

तबले में पूरब घराने के अंतर्गत तीन घराने आते हैं, लखनऊ, फरुखाबाद और बनारस। अब इन घरानों पर हम अलग-अलग विचार करेंगे।

लखनऊ घराना

इस घराने का निर्माण सुधार खाँ के वंशज उस्ताद मोदू खाँ और बख्शू खाँ द्वारा हुआ! ये लोग अपने साथ-साथ दिल्ली-बाज भी लखनऊ ले आये। यहाँ उनकी कला पर पखावज और नाच का यथेष्ट प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप इनका बाज दिल्ली-बाज से पूर्णतथा भिन्न हो गया। इस नवीन बाज का नामकरण लखनऊ के आधार पर लखनऊ बाज हुआ। इस बाज में दिल्ली के चोटी के स्थान पर लव और स्याही का अधिक प्रयोग होने लगा। अतः यह बाज दिल्ली बाज की तुलना में अधिक गंभीर और ज़ोरदार हो गया।

इसमें कायदा, गत, रेला आदि दिल्ली घराने के समान तो बजाये जाते ही हैं किन्तु परन और चक्करदार टुकड़े आदि भी बजाये जाने लगे। इसमें परन पखावज से और चक्करदार टुकड़े नृत्य से लिये गये। इस बाज में धागे तिट तागेतिट, धिट तिट, धिर धिर धिड़नग, कड़धा आदि वर्ण समूहों का अधिक प्रयोग होता है। धिर धिर के विभिन्न प्रकार इस बाज में मुख्यतः दिखाई पड़ते हैं। नीचे लखनऊ घराने के कुछ उदाहरण देखिये।

पेशकारा

धीक	धिंता	ऽधा	धिं ता |	धिं धिं	धा ति	धा धा	धिं धा
×				२			
धा	कृधा	दिं ता	तिरकिट |	धाति	धाकड़	धाधा	तिंता
०				३			
ऽ,त्रक	तिं ता	ऽता	तिंता |	ता किड़	नगतिं	ताता	तिंता
×				२			
धाधा	दिंता	ताता	तिंता |	धाधा	दिंता	ताता	तिंता
०				३			

मोदू और बख्शू खां के वंशज तथा उस्ताद मुहम्मद खाँ के पुत्र मुन्ने खां और आबिद हुसैन तबले के खलीफा हो गये हैं। मुन्ने खां के पुत्र तथा आबिद हुसैन के दामाद व भतीजे उस्ताद वाजिद हुसेन खाँ पूरब-बाज के मान्य खलीफा हैं। ये आज-कल कलकत्ते में रहते हैं। खलीफा आबिद हुसेन के प्रमुख शिष्यों में इन्दौर के उस्ताद जहाँगीर खाँ, बनारस के बीरू मिश्र और कलकत्ते के श्री हिरेन्द्र-गाँगुली हैं। उस्ताद मेहबूब खाँ मिरजकर जहांगीर खाँ के शिष्य हैं।

फरुखाबाद घराना

इस घराने का समावेश पूरब घराने के अंर्तगत होता है। लखनऊ के बख्शू खाँ ने अपने पुत्री की शादी फरुखाबाद के विलायत अली से किया। अतः बख्शू खाँ की बहुत सी चीजें विलायत अली को प्राप्त हो गईं। दूसरे शब्दों में लखनऊ की कला फरुखाबाद चली आई। बख्शू खाँ ने अपने दामाद विलायत अली को बड़ी रुचि और सावधानी के साथ सिखाया। कुछ दिनों बाद विलायत अली हाजी विलायत अली हो गये। आज भी उनकी गतें 'हाजी जी की गतों' के नाम से प्रसिद्ध हैं। हाजी साहब के शिष्यों में उल्लेखनीय नाम हैं, चूड़िया वाले इमाम बख्श, उस्ताद मुबारक अली, उस्ताद सलारी खां और उस्ताद छुन्नू खाँ। उस्ताद सलारी खाँ की चालें अथवा पेशकारें अपना विशेष स्थान रखती थीं। आज भी उनकी चालें 'मियां सलारी की चालें'' के नाम से ज्ञात हैं। हाजी विलायत अली के पुत्र उस्ताद हुसैन अली थे। हुसैन अली के शिष्य उस्ताद मुनीर खां* थे। इनके शिष्य सुप्रसिद्ध अहमद जान थिरकुआ हैं तथा अन्य शिष्य इन्हीं के पुत्र उस्ताद अमीर हुसैन, गुलाम हुसैन खां, शमसुद्दीन खाँ और निखिल घोष हैं। हुसैन अली खां के वंशज उस्ताद नन्हें खां एक अच्छे तबलिये हो चुके हैं। नन्हें खां वाजिद अली शाह के दरबारी तबलिये थे। नन्हें खाँ के पुत्र मसीत खां हैं जो खलीफा मसीत खाँ के नाम से प्रसिद्ध हैं। मसीत खां के पुत्र उस्ताद करामत हुसैन खां एक प्रसिद्ध तबलिये हैं। ये संगत में तथा सोलो प्रदर्शन में विशेष रूप से निपुण हैं। ये आज-कल कलकत्ते के आकाशवाणी केन्द्र में आकाशवाणी कलाकार की तरह नियुक्त हैं।

*इन्होंने हुसैन अली और बोली बख्श के अतिरिक्त अनेक विद्वानों से तबला सीखा।

इनके पिता मसीत खां आज-कल कलकत्ते से रामपुर चले आये हैं। कलकत्ते के श्री ज्ञान घोष मसीत खां ही के शिष्य हैं।

ऊपर हम यह बता ही चुके हैं कि यह कला दिल्ली से लखनऊ और लखनऊ से फरुखाबाद आई। इसलिये फरुखाबाद की वादन-शैली दोनों घरानों मे थोड़ा-बहुत मिलती-जुलती है, किन्तु दिल्ली की तुलना में लखनऊ से अधिक मिलती-जुलती हैं। इस घराने में पेशकारा को चाला व चलन कहते हैं, जिनकी बढ़त एक विशेष प्रकार की होती है। इस घराने के तबलिये तबला-सोलो चले से आरम्भ करते हैं। उसके बाद कायदे, टुकड़े, गतें तथा रेले इत्यादि बजाये जाते हैं। इस घराने की तिपल्ली, चौपल्ली आदि विशेष महत्व की हैं। धिड़नक, दिनतक, त्ति घड़ान, धा धा धिं ता, धा कुधा धिं आदि वर्ण-समूह का अधिक प्रयोग होता है, नीचे इस घराने के कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं।

चलन अथवा चाला

धिं ऽ धाऽ ऽग धाऽ | तित् ऽधा ऽग धाऽ
× २

तिंऽ ताऽ ऽग ताऽ | तित् ऽधा ऽग धाऽ
० ३

गत

धा, धिड़नग तकऽऽ, धिड़नग धा, धिड़नग तिरकिट, तकऽऽ
×

| धा ऽ ग त किट धा ऽ गे, तिरकिट धा त्रक धेकेट क ताग दि गन
२

तकऽऽ,घिड़नग तक ऽऽ,घिड़नग तिरकिट तकऽऽ तकऽऽतिरकिट

०

धाऽग त किट धाऽगे,तिर किट धा त्रक धेकेट क ताग दिग न

३

बनारस घराना

बनारस के पंडित राम सहाय जी लखनऊ के उस्ताद मोदू खाँ के शिष्य होने के कारण यह कला लखनऊ से बनारस चली आई। इस प्रकार लखनऊ की विशेषताओं का बनारस घराने में आ जान स्वाभाविक था। किन्तु कुछ दिनों बाद बनारस-बाज लखनऊ-बाजा से थोड़ा भिन्न हो गई। लखनऊ-बाज पर पखावज और नृत्य का प्रभाव पड़ा ही था, लेकिन यह कला जब बनारस आई तो उस पर पखावज का प्रभाव और भी निखर गया। बनारस-बाज में और भी जोरदारी आ गई। छन्द तथा परनों का बजाना और उन्हें ताल देकर उच्चारण करने की प्रथा चल पड़ी। इसके साथ-साथ पेशकारों और कायदों की अपेक्षा गत, परन, छन्द, लग्गी, लड़ी को अधिक महत्ता मिलने लगी। घेटे घेटे, क्धान, तक घड़ान, तगेन्न, दिन तक, दिड़न्न,गदिगन, धड़न्न, धित्ता आदि बोलों का अधिक प्रयोग होने लगा। बनारस घराने के तबलिये तबला-सोलों पेशकारे के स्थान पर उठान से प्रारंभ करते हैं तथा विभिन्न लयकारियों के टुकड़े अधिकता से प्रयोग करते हैं। इस बाज़ में खुले बोलों का प्रयोग होता है, अर्थात् लव और स्याही का काम चाँटी की अपेक्षा में अधिक होता है। नीचे इस घराने के कुछ उदाहरण देखिये।

कायदा

धीक धीना त्रक धीना | धागि नती ऽकती नाड़ा

× २

तीक तीना त्रक धीना | धागि नधी ऽकधि नाड़ा
| ३

टुकड़ा

धागे तेटे तागे तेटे | कृधा ऽकृ धाऽ किड़नग | दिं दिं नाना नाना
× २ ०

कते टधा ऽ कत्त | धा कत धा कते | टेधा ऽ कत्त धा |
३ × २

कत धा कते टेधा | ऽ कत्त धा कत |
| ३

लग्गी

धा धिं धा ड़ा | धा तिं ता ड़ा | ता ति ता ड़ा | धा धि धा ड़ा
× २ ० ३

पण्डित राम सहाय जी के पुत्र पं० भैरों सहाय, पौत्र पं० बलदेव सहाय जी तथा नाती पं० दुर्गा सहाय अपने समय के अच्छे तबलियों में से थे। पं० दुर्गा सहाय को लोग नन्नू जी भी कहते थे। कहा जाता है कि वे अंधे थे, इसीलिये सूरदास नन्नू जी के नाम से विख्यात हुये। दुर्गा सहाय और कंटे महाराज बलदेव सहाय के प्रमुख शिष्य थे। इस समय कंटे महाराज की अवस्था लगभग ७० वर्ष है। उनके भतीजे और शिष्य बनारस के किशन महाराज की गणना आजकल भारत के युवक कलाकारों में होती है। दुर्गा सहाय ने केवल ३४ वर्ष की अल्पायु में इस संसार का परित्याग कर दिया। इनके शिष्यों में पंडित

श्याम लाल, बाचा गुरू तथा बिक्कू जी हैं। बनारस के सामता प्रसाद (गुदई महाराज) बाचा गुरू के पुत्र तथा बिक्कू जी के शिष्य हैं। सामता प्रसाद के बाल्यावस्था में उनके पिता बाचा गुरू का देहावसान होने की वजह से उन्होंने बिक्कू जी से संगीत-शिक्षा प्रारंभ की। पंडित भैरों सहाय के शिष्य परम्परा में पंडित अनोखे लाल का नाम विशेषकर उल्लेखनीय है। जैसा ही उनका नाम है, ठीक वैसे ही उनके गुण हैं। बनारस के पंडित बीरू मिश्र ने अन्य तबलियों से शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ मुख्यतः लखनऊ के खलीफा उस्ताद आबिद हुसैन खां से प्राप्त की। सन् १६३६ में इनका देहावसान हो गया। बीरू मिश्र अपने समय के तबलियों में संगत करने में अद्वितीय थे।

पंजाब-घराना

इस घराने में तबले का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ। अतः दिल्ली अथवा अन्य घरानों से इसका तनिक भी संबन्ध नहीं है। यहाँ का बाज पखावज पर पूर्णतया आश्रित हैं, केवल अंतर इतना है कि पखावज के खुले बोल तबले पर बन्द करके बजाये जाते हैं। इस घराने में उस्ताद फ़कीर बख्श प्रसिद्ध पखावजी थे। इनके शिष्यों में इन्हीं के पुत्र उस्ताद कादिर बख्श, करम इलाही खाँ और मलन खाँ थे। बम्बई के उस्ताद अल्ला रक्खा ने अन्य विद्वानों के अतिरिक्त उस्ताद कादिर बख्श से भी शिक्षा प्राप्त की।

पंजाब घराने के कायदे, गत, परन बहुत लम्बे होते हैं। विलंबित लय में जब कि दिल्ली घराने के अधिकांश कायदे केवल चार ही मात्रे में समाप्त हो जाते हैं, पंजाब घराने के कायदे एक आवृत्त अथवा सोलह मात्रा ले लेते हैं। विभिन्न लयकारियों की चक्करदार

गतें इस बाज में प्रचुरता से मिलती हैं। धर्णींनाण, नगतेक्ड़तान, घेटत, धिर धिर के ऽ, दुङ्ग-दुङ्ग नग नग, गदिन्नाड आदि वर्ण-समूहों का इस बाज में अधिक प्रयोग होता है। इन बोलों को देखने से यह ज्ञात होता है कि इन पर उनके भाषा का स्पष्ट प्रभाव पड़ा है। इस बाज की विशेषता यह है कि इसमें तीन ताल के समान अन्य तालों का भी विस्तार होता है, जब कि अन्य घरानों में तीन ताल का विस्तार अन्य तालों की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। नीचे एक उदाहरण देखिये।

गत

धिर धिर के ऽ   धिर धिर के ऽ   तिर किट त कता   के ऽ | ग दिन्न
× | २

ऽ ऽघेडनग   तिरकिट त कता   के ऽ | धिर धिर किट   धाड़धा   धड़न्न
०

के ऽ | धिर धिर किट तक   धिर धिर किट तक   तक्ड़ां   घेघे तिर किट
३

| धा   तगन्न   धा   धिर धिर किट तक | धिर धिर किट तक   तक्ड़ां
×   २

घेघे तिरकिट   धा | तगन्न   धा   धिर धिर किट तक   धिरधिर किट तक
०

| तक्ड़ां   घेघे तिर किट   धा   तगन्न
३

दक्षिणी अथवा कर्नाटक ताल पद्धति

कर्नाटक ताल-पद्धति में तालों की संख्या सीमित हैं जब कि उत्तर भारतीय संगीत में तालों की संख्या सीमित नहीं है। आजकल कर्नाटक संगीत में कुल ३५ ताल पाये जाते हैं। इसके पूर्व तालों की संख्या १०८ थी। आधुनिक मुख्य ताल सात हैं, जिनके नाम हैं, ध्रुव, मठ, रूपक, झंप, त्रिपुट, अठ और एक। इनमें से प्रत्येक की पाँच-पांच जातियां होती हैं। इस प्रकार कुल ७ × ५ = ३५ ताल हो जाते हैं। जातियों के नाम हैं, चतस्त्र, तिस्त्र, मिश्र, खण्ड और संकीर्ण। इन जातियों की रचना समझने के पूर्व ताल के चिन्हों को समझ लेना आवश्यक होगा।

नाम	चिन्ह	काल-मान
अणुद्रुत अथवा विराम	◡	१ मात्रा
द्रुत	०	२ ,,
लघु	।	४ ,,
गुरु	ऽ	८ ,,
प्लुत	३	१२ ,,
काकपद	×	१६ ,,

अंतिम तीन चिन्हों का प्रयोग आजकल कर्नाटक संगीत में नहीं होता। इनका प्रयोग अणुद्रत, द्रुत तथा लघु के साथ १०८ तालों में होता था। अतः यह स्पष्ट हो गया कि ३५ तालो की पद्धति में केवल अणुद्रत, द्रुत तथा लघु के चिन्हों की आवश्यकता होती

है। इनमें लघु का विशेष महत्व है। लघु की मात्रायें बदला करती हैं और उनके बदलने से विभिन्न जातियों की उत्पत्ति होती है।

(क) चतस्त्र	जाति की	ताल में	लघु की	४	मात्रायें होती हैं।
(ख) तिस्त्र	,,	,,	,,	३ ,,	,,
(ग) मिस्त्र	,,	,,	,,	७ ,,	,,
(घ) खण्ड	,,	,,	,,	५ ,,	,,
(ङ) संकीर्ण	,,	,,	,,	६ ,,	,,

मुख्य सात तालों की निम्नलिखित रूपरेखा है।

संख्या	नाम	विभाग-संख्या	चिन्ह
(१)	ध्रुव ताल	४	। ०।। अर्थात् ४,२,४,४
(२)	मठ ताल	३	। ० । ,, ४,२,४
(३)	रूपक ताल	२	० । ,, २,४
(४)	झंप ताल	३	। ◡ ० ,, ४,१,२
(५)	त्रिपुट ताल	३	। ० ० ,, ४,२,२
(६)	अठ ताल	४	।। ० ० ,, ४,४,२,२
(७)	एक ताल	१	। ,, ४

उपर्युक्त सभी ताल चतस्त्र जाति में लिखे गये हैं, क्योंकि लघु का मान चार मात्राओं का है। इसी प्रकार तिस्त्र जाति में लघु का मान तीन हो जावेगा। मिश्र जाति में सात मात्राओं का, खण्ड में पांच मात्राओं का और संकीर्ण में नौ मात्राओं का लघु हो जावेगा। तिस्त्र जाति का ध्रुवताल ।०।। अर्थात् ३ + २ + ३ + ३ = ११ मात्राओं का होगा। इसी प्रकार मिश्र जाति का ध्रुवताल ७ + २ + ७ + ७ = २३ मात्राओं का होगा। एक ताल में केवल एक विभाग लघु का होता है। इसलिये चतस्त्र जाति का एक ताल चार मात्राओं का, तिस्त्र जाति

का तीन मात्राओं का, मिश्र जाति का सात मात्राओं का, खण्ड जाति का पांच मात्राओं का तथा संकीर्ण जाति का एक ताल नौ मात्राओं का होता है।

प्रत्येक विभाग की प्रारम्भिक मात्रा पर सदैव ताली मानी जाती है, किन्तु उत्तर भारतीय संगीत के समान खाली का प्रयोग नहीं होता। किसी विभाग का बीच की मात्राओं को खाली अथवा विसर्जितम् के द्वारा दिखाते हैं। विसर्जितम् में तीन प्रकार की क्रियायें होती हैं। हाथ ऊपर उठा कर खाली दिखाने की क्रिया को पताकं विसर्जितम्, बांई ओर झुकाने को कृषय विसर्जितम् तथा दाहिनी ओर हाथ झुकाने की क्रिया को सर्पिणी विसर्जितम् कहते हैं।

अणुद्रुत अथवा एक मात्रे के विभाग में विसर्जितम् नहीं होता। द्रुत अर्थात दो मात्राओं के विभाग में प्रथम मात्रे पर ताली और दूसरे पर विसर्जितम् होती है। लघु में प्रथम मात्रे पर ताली और अन्य शेष मात्राओं पर विसर्जितम् अथवा खाली होती है, जिन्हें हाथ की क्रिया द्वारा दिखाते हैं।

उत्तर भारतीय तालों को कर्नाटक पद्धति में लिखना

पीछे हम यह बता ही चुके हैं कि कर्नाटक पद्धति में विभाग के प्रथम मात्रे पर कभी भी खाली नहीं होता। इसलिये उत्तर भारतीय तालों को लिखने के लिये खाली के विभाग को उसके आगे के विभाग में जोड़ लेंगे। उदाहरणार्थ झपताल का विभाग इस प्रकार है २, ३, २, ३ और तीसरे विभाग के प्रथम मात्रे पर खाली है। इसलिए तीसरे विभाग को दूसरे में जोड़ देंगे और दूसरा विभाग पाँच मात्राओं का हो जावेगा और चार विभाग के स्थान पर कुल तीन विभाग हो जावेंगे। अतः झपताल को ◡० । ◡० अर्थात २ + ५ + ३ = १०, इस प्रकार लिखेंगे। किन्तु यदि झपताल के प्रत्येक विभाग को लिखें तो उसे इस प्रकार लिखेंगे ० ◡० ० ◡० अथवा

० । ० । (तिस्त्र जाति का) । इसी प्रकार अगर तीन ताल के प्रत्येक विभाग को दिखावें तो उसकी रूपरेखा इस प्रकार होगी । । । । (चतस्त्र जाति का) । अगर खाली का विभाग हटा दें तो तीन ताल को ।ऽ। अर्थात ४ + ८ + ४ = १६, इस प्रकार लिखेंगे । इसी प्रकार अन्य ताल भी लिखे जा सकते हैं ।

कर्नाटक तालों को भी उत्तर भारतीय पद्धति में लिखा जा सकता है, किन्तु यह अपेक्षाकृत सरल है । नीचे कुछ उदाहरण दिये जा रहे हैं ।

चतस्त्र जाति का मठ ताल ।०। अर्थात ४, २, ४

१ २ ३ ४	५ ६	७ ८ ९ १०
+	२	३

तिस्त्र जाति का मठ ताल ३, २, ३

१ २ ३	४ ५	६ ७ ८
+	२	२

खण्ड जाति का मठ ताल ५, २, ५

१ २ ३ ४ ५	६ ७	८ ९ १० ११ १२
×	२	३

तीसरा अध्याय

वाइलिन अथवा बेला

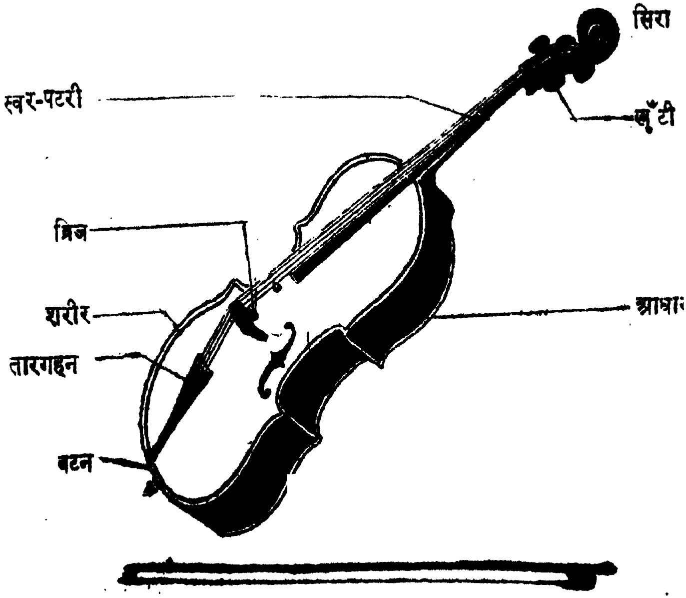
इस स्थान पर उपयुक्त वाद्य के भारतीय अथवा अभारतीय होने की समस्या पर न विचार करके केवल इतना ही मान लेंगे कि वाइलिन अथवा बेला का प्रचार भारतवर्ष में लगभग पचास वर्षों से हुआ। कहा जाता है कि भारत में इसका आगमन यूरोपीय व्यक्तियों के साथ-साथ हुआ। इसलिये सर्वप्रथम समुद्र तटीय स्थानों पर जैसे गोआ, बम्बई, मद्रास, कलकत्ता में बेला का प्रचार हुआ। तदुपरान्त इसका प्रचार धीरे-धीरे बढ़ता गया और आज भारतीय तन्त-वाद्यों में इसका प्रमुख स्थान है। इसका उपयोग स्वतः वादन (Solo performance) में, गायन की संगत में तथा वाद्यवृन्द में होता है। इटली और जर्मनी के बने हुये बेले प्रसिद्ध हैं। भारतवर्ष में भी आजकल अच्छे प्रकार के बेले बनने लगे हैं। इस वाद्य में केवल चार तार होते हैं।

अंग वर्णन—

(१) शरीर अथवा बेली—बेले का वह खोखला भाग जिस पर बुरच रक्खा जाता है और जिसके ऊपर से चारों तार गुजरते हैं, बेले का शरीर अथवा बेली कहलाता है। इसके ऊपर का भाग छाती और पीछे का पीठ कहलाता है।

(२) **आधार-काष्ठ**—बेले के शरीर के चारो ओर की लकड़ी जो ऊपर और नीचे भागों को जोड़ती है तथा दोनों के बीच आधार का कार्य करती है, आधार-काष्ठ कहलाती है। इसमें कई टुकड़े जुड़े रहते हैं। अंग्रेजी में इसे 'रिब्स' कहते हैं।

बेला



(३) **ध्वनि-सूराख**—बेले के शरीर के ऊपरी भाग में घुरच के दोनों ओर अंग्रेजी अक्षर 'यफ' के शक्ल की एक-एक सूराख होती है। दोनों सूराखों में घुरच की ओर नोंक सी रहती हैं जिनकी कल्पित रेखा पर घुरच अथवा ब्रिज लगाई जाती है।ध्वनि-सूराखों से बेले की ध्वनि का प्रस्तार होता है।

(४) **घुरच अथवा ब्रिज**—एक विशेष आकृति का बना हुआ लकड़ी का टुकड़ा जो शरीर के ऊपरी भाग पर रक्खा जाता है घुरच अथवा ब्रिज कहलाता है। यह दोनों ध्वनि-सूराखों के बीच में होता है इसके ऊपर से चारों तार गुजरते हैं।

(५) **ध्वनि-स्तम्भ**—बेले के शरीर के अंदर पतली पेंसिल के समान मोटी लकड़ी का वह टुकड़ा जो घुरच के दाहिने सिरे के नीचे खड़ा किया जाता है, ध्वनि-स्तम्भ कहलाता है। इसके लगाने से एक ओर बेले की ध्वनि बढ़ती है और दूसरी ओर शरीर के ऊपरी भाग को काफी सहारा मिलता है। अंग्रेजी में इसे 'साउन्ड पोस्ट' कहते हैं।

(६) **तारगहन**—एक विशिष्ट आकार का लकड़ी का टुकड़ा जिसके एक ओर चारों तार फँसाने के लिये चार छिद्र तथा दूसरी ओर एक छिद्र होता है, तारगहन कहलाता है। दूसरे छिद्र के सहारे तारगहन बटन से बंधा रहता है। इसका आकार कुछ-कुछ जिह्वा से मिलता-जुलता है। अंग्रेजी में इसे 'टेलीपींस' कहते हैं।

(७) **बटन**—बेले के पिछले भाग में लगा हुआ तारगहन अटकाने के लिये लकड़ी का टुकड़ा बटन कहलाता है।

(८) **काली पटरी**—बेले के अग्र भाग में आबनूस लकड़ी की बनी हुई लगभग १० इन्च की एक पटरी होती है। पटरी का थोड़ा भाग बेले के शरीर के ऊपर होता है और शेष शरीर के बाहर। इस पटरी के ऊपर चारो तारों को आवश्यकतानुसार अंगुलियों से दबाते हैं,जिससे विभिन्न ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं। इस पटरी पर अंगुलियों

के प्रयोग होने की वजह से इसे अंग्रेजी में 'फिंगर बोर्ड' भी कहा जाता है।

(९) **गर्दन**—काली पटरी के नीचे एक दूसरी लड़की होती है, जिसे गर्दन कहते हैं। बजाते समय यह भाग हथेली पर आता है।

(१०) **अटी**—गर्दन के ऊपर काली पटरी के पहले आबनूस की लकड़ी का एक छोटा टुकड़ा होता है जिसके ऊपर से तार खूँटियों तक जाते हैं। इस टुकड़े को अटी अथवा नट कहते हैं।

(११) **सिरा**—अटी के ऊपर का भाग जिसमें खूंटियाँ लगी रहती हैं सिरा कहलाता है। अधिकतर सिरे के ऊपर चक्कर सा बना रहता है, जिसे अंग्रेजी में 'स्क्राल' कहते हैं।

(१२) **खूटियां**—बेले के सिरे में तारों को अलग-अलग बाँधने के लिये चार खूंटियां होती हैं, दो दाईं ओर और दो दाईं ओर। बाईं ओर की खूंटियों में मन्द्र-पंचम अथवा मध्यम तथा षड्ज के तार, तथा दाईं ओर की खूँटियों में शेष दो तार अलग-अलग बांधे जाते हैं। कुछ बेलों में खूँटियों के स्थान पर पीतल की चाबियाँ लगी रहती हैं। इन्हें लगाने से बेले को मिलाने में सरलता अवश्य हो जाती है, किन्तु ध्वनि कुछ तीखी हो जाती है। सात तार के बेले में इस प्रकार की सात चाबियां होती हैं।

(१३) **तार**—तार की दृष्टि से बेले दो प्रकार के होते हैं, चार तार वाले और सात तार वाले। चार तार वाले बेले प्रचार में अधिक हैं। ये तार लोहे के होते हैं। प्रथम तीन तारों पर चाँदी या आलमूनियम के पतले तार लपेटे हुये रहते हैं। बांये से प्रथम तार सब से अधिक मोटा होता है। अन्य तार एक दूसरे से क्रमशः पतले होते जाते हैं। यूरोप में तथा दक्षिण भारत में तांत के तार प्रयोग किये जाते हैं। सात तार के बेलों में साधारण बेलों के समान चार तार होते हैं और प्रथम तार अर्थात् मध्यम के तार को छोड़कर शेष तारों में एक-एक

और तार उसके बगल में होते हैं। इस प्रकार के बेले का वृन्द-वादन में प्रयोग होता है।

(१४) **स्वर-सुधारक यंत्र** (ऐडजेस्टर)—तारगहन के अगले भाग में जहां चार छिद्र होते हैं, ये यंत्र लगाये जाते हैं। इनकी संख्या चार होती है। प्रत्येक यंत्र एक-एक तार से बंधा रहता है। स्वरों को सूक्ष्म चढ़ाने अथवा उतारने के लिए इनका प्रयोग होता है। इनका प्रयोग केवल उन्हीं बेलों में होता है जिनमें लकड़ी की खूँटियाँ होती है। पीतल की चाबियों वाले बेले में ये यंत्र नहीं लगाये जाते क्योंकि केवल चाबियां ही पर्य्याप्त होती हैं। इनको अंग्रेजी में 'ऐडजेस्टर' कहते हैं।

(१५) **चिनरेस्ट**—बेले के पिछले भाग में तारगहन के पास लकड़ी और धातु का बना हुआ एक यंत्र होता है। इस यंत्र से बेले का पिछला भाग जिस पर तार के खिंचने से बहुत अधिक खिंचाव पड़ता है अच्छी तरह दबा रहता है। इससे बेले का पिछला भाग गर्मी अथवा बरसात में नहीं खुलता। बेले के पाश्चात्य प्रकार के बैठक में इस पर ठोड़ी रक्खी जाती है। इसीलिये इसको अंग्रेजी में 'चिनरेस्ट' कहा गया है।

गज के अङ्ग

(१) **छड़ी**—वह लम्बी पतली लकड़ी जिसमें बाल लगाकर बेला बजाते हैं छड़ी कहलाती है। इस छड़ी में एक विशेष प्रकार का घुमाव (Curve) रहता है।

(२) **सिरा**—छड़ी का अगला भाग जो कुछ उठा हुआ है तथा जिसमें बालो का एक सिरा बंधा रहता है।

(३) **बाल**—घोड़े के बालों को छड़ी के योग्य बनाने के लिये प्रत्येक को यंत्र द्वारा चौखुँटा करते हैं तथा अन्य रसायनिक पदार्थों

का प्रयोग करते हैं। जब बाल छड़ी में लग जाती है तो उसमें रेजिन अथवा राजन लगाते हैं।

(४) स्क्रू—छड़ी के बालों को कसने के लिये उसके पिछले भाग में एक छोटा यंत्र होता है जिसे स्क्रू कहते हैं।

बेला बजाने की बैठक

बेला बजाने की मुख्य तीन बैठके हैं।

(१) पाश्चात्य ढंग के अनुसार बेले को बायें हाथ पर रखकर तथा उसके पिछले अंग को गर्दन से लगाकर चिनरेस्ट को ठोढ़ी से दबाते हैं और तत्पश्चात् उसे बजाते हैं। इस प्रकार के बैठक में मींड और गमक का काम अच्छी तरह नहीं हो सकता है इसलिये यह बैठक पाश्चात्य संगीत के लिये अधिक उपयुक्त है।

(२) दूसरी बैठक के अनुसार बेले के गर्दन को बाये हाथ की हथेली पर रखते हैं तथा उसके पिछले भाग को अपनी छाती से लगा देते हैं। इस बैठक के आविष्कारक प्रयाग के स्व० श्री गगन चन्द्र चटर्जी थे। यह बैठक उत्तर भारतीय संगीत के लिये प्रथम बैठक से अधिक उपयुक्त है। इस बैठक की विशेषता यह है कि बेले पर अँगुलियाँ स्वतः स्वर पर पड़ती हैं क्योंकि बेला बाये हाथ की कलाई पर स्थित हो जाता है। अतः विद्यार्थियों को इसी बैठक से प्रारम्भ कराना चाहिये। यह बैठक संगत के लिये अनुपयुक्त है। इसके विपरीत लम्बी अँगुलियों वाले व्यक्तियों के लिए यह बैठक स्वतंत्र-वादन (Solo performance) में सर्वश्रेष्ठ है।

(३) तीसरी और अन्तिम बैठक में बेले के सिरे को बाएँ अथवा दायें पैर की ऐड़ी पर अथवा भूमि पर रखते हैं तथा उसके पिछले भाग को छाती के बीच में अथवा उसके ऊपर रखते हैं। इस बैठक में बायाँ हाथ किसी प्रकार के बन्धन में नहीं रहता इसलिये

मींड और गमक के प्रयोग में विशेष सुविधा रहती है। अतः यह बैठक संगत के लिए सब से अधिक उपयुक्त है, किन्तु प्रारम्भिक विद्यार्थी को इस बैठक पर नियंत्रण पाने के लिये अधिक समय देना पड़ता है।

अन्तिम दोनों बैठक उत्तरी भारतीय संगीत के लिए उपयुक्त हैं तथा दोनों के अपने-अपने गुण हैं। हथेली पर बेला रखने से थोड़े समय में सफलता मिल जाती है किन्तु इस प्रकार के बैठक में सीमित कार्य हो सकते हैं। दूसरे प्रकार के बैठक में प्रारम्भ में कुछ अधिक समय लग जाता है, किन्तु इस प्रकार के बैठक में अधिक कलात्मक सौन्दर्य दिखलाया जा सकता है।

बेले के तार और उनके स्वर

बेला मिलाने की कई प्रणालियाँ भारत में प्रचलित हैं। पहली प्रणाली पाश्चात्य विधि पर आधारित है। प्रथम तार मन्द्र के म में, दूसरा तार मध्य के षड़ज में, तीसरा मध्य के पंचम में तथा चौथा तार तार सप्तक के रिषभ में मिलाते हैं। दूसरी विधि यह है कि चारो तार क्रमशः प़ स प सां में मिलाते हैं। तीसरी प्रणाली यह है कि तारों को क्रमशः म़ सा प सां में मिलाते हैं। चौथी विधि यह है कि तारों को स प स प में मिलाते हैं।

चौथी विधि में मन्द्र सप्तक की सीमा अवश्य बढ़ जाती है किन्तु तार सप्तक की सीमा अपरोक्ष रूप में कम हो जाती है, अतः काम चलाने के लिये अन्तिम तार में बहुत अधिक खींच कर बजाना पड़ता है। दूसरे प्रकार में मन्द्र सप्तक में एक स्वर कम हो जाता है। एक तो बेले में मन्द्र सप्तक के स्वर कम होते ही हैं, दूसरे उसे और भी कम करना कहाँ तक उचित है, इसका निर्णय स्वयं पाठक ही कर सकते हैं। यह बुराई प्रथम प्रकार में नहीं रहती किन्तु अन्तिम तार को तार के रे में मिलाना अधिक उचित नहीं मालूम पड़ता क्योंकि इसकी वजह से झाला बजाने में असुविधा होती है। तार सा में मिलाने से तथा कभी-कभी

बजाते समय छेड़ देने से स्वर का आस मिलता रहता है। दूसरे इस प्रकार में सब राग बज सकते हैं। तार रे में मिलाने वाले भी उन रागों को बजाते समय जिनमें कोमल रे लगते हैं इस तार को तार सां में उतार लेते हैं। तार सा में मिलाने से अन्तिम सुविधा यह है कि इस तार पर अन्य दो तारों के समानान्तर अँगुलियां चलती हैं। तार पंचम कनिष्ठिका (छिगुनी) से बजाते हैं, अथवा सूत द्वारा बजाते हैं। केवल समानान्तर अंगुलियों को रखने के लिये प्रथम तार मन्द्र प में मिलाना ठीक नहीं, क्योंकि मन्द्र का एक स्वर (म) पञ्चम के मिलाने से अधिक प्रिय है !

इन सब दृष्टियों से तीसरी विधि सर्वश्रेष्ठ है। इसीलिये अधिकाँश उत्तर भारतीय बेला-वादक इसी प्रणाली को अपनाते हैं। प्रथम तार को मन्द्र प में मिलाने वाले व्यक्तियों को भी मालकंस ऐसे रागों को बजाने के लिये उसी सप्तक के मध्यम में मिलाना पड़ता है।

बेले का जन्म और विकास

प्राचीन काल में भारत, चीन, बेबीलोनिया, मिश्र आदि देशों में इतना अधिक सांस्कृतिक आदान-प्रदान और सम्पर्क था कि आज यह बताना लगभग असम्भव सा हो गया है कि सर्वप्रथम किस देश में तन्त्रवाद्यों का प्रयोग हुआ। लेकिन इतना तो निश्चित ही है कि सर्वप्रथम भारत में ही वाद्यों को बजाने के लिये गज का प्रयोग हुआ। प्राचीन काल के रावणस्त्रन अलापिनी, किन्नरी वीणा, पिनाकी वीणा आदि ऐसे ही वाद्य थे। इसमें 'रावणस्त्रन' प्राचीनतम् वाद्य था। 'हिन्द की घाटी की खुदाई से वीणा के प्रकारों के जो चिन्ह मिले हैं, उनसे पता चलता है कि ईसा से ३५०० वर्ष पूर्व से लेकर २५०० वर्ष पूर्व तक चीन, मिश्र, बेबीलोनिया और भारतवर्ष में तन्त्र-वाद्यों का प्रयोग था, किन्तु ये वाद्य आधुनिक सितार, सरोद आदि की भाँति आघात से छेड़ कर (जैसे—मिजराब, जवा अथवा अंगुलियों से बजाना) बजते थे, गज से नहीं। उन्हीं चिन्हों से यह भी पता चलाया गया है कि गज से बजने वाला उसी प्रकार का कोई वाद्य लंका में प्रचलित था, अर्थात गज का प्राचीनतम प्रयोग, भारत के लंका में ही हुआ था।' प्राचीन भारतीय शास्त्रों में गज के लिये जीवा चलशंक, धनुष आदि तथा मिजराब के लिये कोणांगुली अथवा नखी आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। शारंगदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' में १८ प्रकार की वीणा का उल्लेख है। उनमें से आलापिनी का वर्णन आधुनिक बेला के सदृश्य है। ऐसा मालूम पड़ता है कि आधुनिक बेला उसी का विकसित रूप है। चीन के इतिहास में राजा

कनफ्यूशस के समय नारियल से बने बेले का उल्लेख है, जिसका प्रयोग आज भी चीन के लोक-संगीत में होता है।

प्राचीन रवाब वीणा के ही समान एक वाद्य था। मुस्लिम दार्शनिक अल-फराबी (८७०-९५०) के मतानुसार सीरिया और मेसोपोटेमियां से रवाब अरब गया और उसके बाद नवीं शताब्दी में भारत से गज का प्रयोग गया। अतः नवीं शताब्दी से रवाब गज से बजाया जाने लगा। इसी समय अरब का अलऊद ऐशियाई तुर्की होते हुये यूरोप जा पहुँचा और उसका संशोधित रूप 'फिडेल' कहलाया। उसके बाद चौदहवीं शताब्दी में गज से बजाया जाने वाला रवाब मूर (Moors) लोगों के द्वारा अरब से स्पेन जा पहुंचा, जहाँ उसके संशोधित रूप को Vihuela-dearco (विहुएला दीआरको) की संज्ञा प्राप्त हुई। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक बेला का जन्म निम्नलिखित दो वाद्यों के सम्मिश्रण से हुआ।

(१) अलऊद से विकसित फिडेल

(२) रवाब से विकसित विहुएला-दी-आरको

दोनों के मेल से गज से बजाया जाने वाला फिडेल विकसित हुआ और दसवीं शताब्दी से फिडेल में परिवर्तन होना प्रारम्भ हो गया। पन्द्रहवीं शताब्दी तक बेला बिल्कुल साधारण स्तर का था। श्री जी० एन० गोस्वामी के मतानुसार बेला के निम्नलिखित भाग उनके सामने लिखे गये समय में विकसित हुये।

(१) तारगहन (टेलपीस) का प्रयोग १० वीं शताब्दी में।

(२) ध्वनि-सूराख (साउन्ड होल) सी 'C' अक्षर की भाँति ११ हवीं शताब्दी में और एस 'S' अक्षर की भाँति १४ हवीं शताब्दी में।

(३) गर्दन (Neck) का वास्तविक रूप ११ हवीं शताब्दी में।

(४) कमर (बेले में बृज के नीचे का भाग) को १२ हवीं शताब्दी में छोटा किया गया और दोनों तरफ किनारों को थोड़ा ढालू कर दिया गया जिससे गज चलाने में सुविधा हो गई।

(५) पीठ (बेले का पिछला भाग) को १४ हवीं शताब्दी में थोड़ा सा मोड़ (curved) कर आधुनिक रूप दिया गया।

(६) सिरा (पेग बाक्स) १४ वीं शताब्दी में बना। सोलहवीं शताब्दी में दो प्रकार के बेले बने (१) वायला–डा–गम्बा (viola–da–gamba)—यह बड़े प्रकार का बेला था जिसमें अलऊद की भाँति छः अथवा सात तार होते थे। यह दोनों पैरों के बीच में रखकर बजाया जाता था। 'gamba' के अर्थ होते हैं, पैर। इस प्रकार के बेले का प्रचार १८ वीं शताब्दी तक समाप्त हो गया।

(२) वायला-डा ब्रैशियो (viola-da-braccio)—ब्रैशियो के अर्थ होते हैं 'बाज़ू', अतः इस प्रकार का बेला हाथ पर रखकर बजाया जाता था। इसमें रिबेक की भाँति चार तार होते थे।

'The bigger variety of violin was placed between the legs and was called Viola-de-gamba (gamba-legs) and the smaller one was placed on arms and hence was called Viola-de-braccio (braceis-arms) The former became obscelete by the 18th century.'

द्वितीय प्रकार के बेले का पूर्ण विकास इटली के दो स्कूलों द्वारा हुआ। गैसपारो बरतोलेत्ती जो अपने जन्म-स्थान डा सैलो के नाम से प्रसिद्ध हुये, उच्च कोटि के प्रथम बेला-निर्माता थे। उन्होंने बेला बनाने वालों का स्कूल स्थापित किया जिसका नाम था ब्रैशिया स्कूल (Brescia School)। गैसपारो के प्रधान शिष्य गिओवानो पालो मैगिनी (Giovano-Paolo-Magginini, 1580-1632) थे।

बेला बनाने वालों के दूसरे स्कूल का नाम था, क्रिमोना स्कूल (Cremona School)। इस स्कूल के मुख्य कारीगर थे, ऐन्ड्रिया

ऐमटी (Andrea Amati), गिसेपी ग्वेरनरों (Guiseppe Guerneri), आन्तोनियों स्ट्राडिगैरी आदि ।

इस प्रकार बेले के विकास में इटली का बहुत हाथ रहा । आगे चलकर जर्मनी, हालैंड, फ्रान्स, अमरीका और इंगँलैन्ड में भी अच्छे बेले बनने लगे । बेले का आधुनिक रूप यूरोप के लोगों द्वारा भारत आया । धीरे-धीरे इसका प्रचार बढ़ता गया और आजकल भारत में भी अच्छे प्रकार के बेले बनने लगे हैं ।

बेला बजाने की विभिन्न शैलियाँ

भारत में बेला बजाने की दो मुख्य शैलियाँ प्रचलित हैं (१) गायन-शैली और (२) गत-शैली।

गायन शैली—इस शैली में सारंगी के समान बेला पर पूरी गायकी बजाने का प्रयत्न करते हैं। इसमें अलाप के पश्चात् किसी गाने की बंदिश बजाना प्रारम्भ करते हैं, अतः श्रोताओं को शब्दों का आभास मिलता रहता है। गाने की बंदिश को विभिन्न प्रकार से भरते हैं तथा बीच-बीच में स्वरों की बढ़त करते हैं। तानों का प्रयोग भी गायन के समान करते हैं। गमक और मींड की प्रधानता होने के कारण इस शैली को बजाने वाले वादक दायें अथवा बायें पैर की ऐड़ी पर बेले का सिरा रख कर बजाते हैं। किन्तु कुछ वादक बेले को सिरे को पैर की ऐड़ी पर न रख कर पृथ्वी की सतह पर कपड़े के सहारे रखते हैं। गायन-शैली में बहुधा झाले का प्रयोग नहीं करते।

कर्नाटक के बेला-वादकों पर वहां की गायन-शैली का बहुत प्रभाव है। वे लोग वर्णन, उत्तरांग, पूर्वांग, पल्लवी, अनुपल्लवी, तान आदि गायन के समान बेले पर पूरी तौर से चित्रित करते हैं तथा स्वरों को शुद्धता और गाने के शब्दों पर विशेष ध्यान देते हैं। वहां संगत में बेले का प्रमुख स्थान है, इसीलिये उनकी वादन-शैली पर गायन का बहुत कुछ अंश दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार बम्बई प्रदेश में भी वहां के बेला-वादकों पर गायन का बहुत कुछ प्रभाव है।

पंजाब के बेला-वादकों पर वहां के लोक गीत जैसे माहिया, हीर, राँझा आदि का बहुत प्रभाव है। इसी प्रकार बंगाल के बेला-वादकों पर भी वहां के लोक गीत जैसे बाऊल, भटियाली तथा कीर्तन आदि की बहुत छाप है।

मैहर के उस्ताद अलाउद्दीन बेला बजाने में अंगुलियों का प्रयोग सारंगी के समान करते हैं तथा बेले को बायें हाथ पर न रख कर दाहिने हाथ पर रख कर बजाते हैं तथा छड़ी बांई हाथ में रहती है। बेले का पिछला भाग ठोड़ी से दबा रहता है। अलाउद्दीन खाँ बेले पर गायन-शैली का ही रूप खींचते हैं।

गत-शैली—यह शैली प्रयाग के स्वर्गीय गगन चन्द्र चटर्जी की अमूल्य देन है। गगन बाबू करामत उल्ला खां के शिष्य थे, इसलिये वे पहले सरोद बजाते थे। किन्तु कुछ दिनों बाद उन्होंने बेला बजाना प्रारंभ किया। उन्होंने बेला रखने और बजाने की एक नई प्रणाली का आविष्कार किया। बायें हाथ पर बेला रखने की एक नवीन प्रथा सर्वप्रथम उन्होंने ही प्रारंभ किया। गत-शैली में अंगुलियों के अग्रभाग का काम अधिक और घसीट कर बजाने का काम (सारंगी के समान) कम होता है। प्रारम्भ में जोड़, मींड, गमक, लड़ी, घसीट आदि के साथ स्वर-विस्तार करते हैं और उसके बाद सितार और सरोद की भाँति सर्वप्रथम मसीतखानी और तत्पश्चात् रज़ाखानी गत बजाते हैं तथा गत दा दिर दा रा आदि बोल से निर्मित रहता है। तानें सितार की तोड़ों तथा गायन की तानों से भिन्न होती हैं। कुछ ताने छंद का रूप धारण करती हैं तथा कुछ तबले के बोल पर आधारित होती हैं, अतः गत-शैली में लयकारी की प्रधानता रहती है। विभिन्न मात्राओं से उठने वाली तिहाइयाँ इस शैली में निखर उठती हैं। रज़ाखानी गत के अंत में कई प्रकार के झालों का प्रयोग सर्वसाधारण के लिये बड़ा आनन्ददायी होता है।

यह शैली अधिक आकर्षक होने के कारण रंग-मंच (stage) के लिये अधिक उपयुक्त हैं। इस शैली में अधिक गुण होने के साथ-साथ कुछ दोष भी है, जिन पर ध्यान देना आवश्यक है। प्रत्येक राग को छंद बद्ध करने से कभी-कभी उस राग के बिगड़ने की आशंका रहती है। दूसरे गत-शैली में राग की बढ़त पर विशेष ध्यान नहीं दिया

जाता है। अतः राग-स्वरूप तथा स्वरों की बढ़त पर वादकों का विशेष ध्यान रहना चाहिये। इस नवीन शैली को जन्म देने का श्रेय स्व० गगन बाबू को प्राप्त होता है और अब उसकी उन्नति का उत्तरदायित्व उनके शिष्यों पर आता है। आशा है शीघ्र ही यह कार्य कार्यान्वित होगा।

गायन-शैली में जैसा कि हम पीछे बता ही चुके है कि इसमें गायन की नकल उतारने का प्रयत्न करते हैं और जो वादक जितना अधिक नकल कर लेता है, वह उतना ही श्रेष्ट समझा जाता है। इस शैली की विशेषता यह है कि इसमें श्रोताओं को शब्दों का आभास मिलता रहता है किन्तु गत-शैली की तुलना में अधिक आकर्षक नहीं हो पाता। दूसरी ओर अधिकांशः गत की बंधिश ही बड़ी आकर्षक होती है। इसलिये अगर दोनों शैलियों की विशेषताओं को एक में समन्वय कर दिया जाय अर्थात् गाने की बंधिश को गत के रूप में परिवर्तित कर बजाया जाय तो इसका फल अधिक प्रभावकारी होगा। इससे एक ओर श्रोताओं को शब्दों का आभास मिलता रहेगा और दूसरी ओर गाने की बंधिश में जोरदारी आ जावेगी।

दूसरे केवल गायन की नकल करना और उस वाद्य के विशेषताओं की पूर्ण अवहेलना करना बुद्धि संगत नहीं प्रतीत होती। वास्तव में सर्वप्रथम उसकी विशेषताओं पर ध्यान रखते हुये वादन-शैली का निर्माण होना चाहिये और उस समय अगर गायन, सितार, सरोद सारंगी अथवा किसी भी वाद्य की छाप दिखाई पड़े तो इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती हैं? बेले पर किसी की नकल करने की प्रवृति अथवा उस पर किसी की छाप आने से उस स्वर-समुदाय को पूर्णतया निकाल देने की प्रवृत्ति एक सिरे के दो किनारे हैं, जिनसे सदैव दूर रहना चाहिये। खेद है कि इस समय तक बेला-वादन भारत की अन्य तन्त्र-वाद्यों की तुलना में बहुत पिछड़ा हुआ है और

अन्य देशों के स्वर से तुलना करना व्यर्थ है। अतः इसके विकास का कार्य-भार आज के बेला वादकों पर है। यह अवश्य है कि भारत में बेला-वादन कुछ ही दिनों से प्रारम्भ हुआ है, किन्तु केवल इतना कह देने से सन्तोष नहीं मिल जाता। इस तर्क से हम अपने को तथा दूसरों को समझा अवश्य लें, किन्तु यह निश्चित् है कि इससे वस्तु-स्थित में तनिक भी परिवर्तन होगा।

बेले का उपयोग

यूरोपीय व्यक्तियों के आगमन के साथ-साथ भारतवर्ष में बेला का भी आगमन हुआ। सर्वप्रथम भारत के तटीय भागों में जैसे कलकत्ता, मद्रास, गोआ और बम्बई में इसका प्रचार हुआ। धीरे-धीरे इसका सम्पर्क जनता से बढ़ता गया और आज भारत के सम्पूर्ण भागों में इसका प्रचार हो गया है। बंगाल में इसका इतना अधिक प्रचलन हुआ कि इसे 'भिखारियों का वाद्य' कहने लगे हैं जो सर्वथा अरूचिकर और निन्दनीय है।

बेले का उपयोग मुख्यतया दो प्रकार से होता है (१) गायन की संगत में और (२) स्वतंत्र वादन में।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि यद्यपि वाद्य गायन की संगत के लिए ही निर्मित हुये थे किन्तु कुछ वाद्य धीरे-धीरे गायन की संगत से हटकर स्वतन्त्र वाद्य हो गए हैं। सरस्वती वीणा का उपयोग सदारंग के समय तक गायन की संगत के लिये ही होता था। सदारंग जिन्हें हम गायक के रूप में जानते हैं एक अच्छे वीणाकार थे। उन्होंने वीणा-वादन का परित्याग केवल इसीलिए किया कि उन्हें सदैव गायकों के पीछे रहना पड़ता था। लेकिन इसके बाद उन्होंने गाना शुरू किया और एक अच्छे गायक हुये।

बेलो में धातु के तार लगाये जाने की वजह से उनकी ध्वनि अपनी निज का अस्तित्व रखती है इसलिए इस प्रकार के बेलों से गायन की संगत करने से गायन फीका पड़ जाता है। बेले का जोरदार स्वर गायक की आवाज को दबा देता है। इस दृष्टि से यह वाद्य स्वतंत्र-वादन के अतिरिक्त हल्के संगीत की पृष्ठ-भूमि संगीत में अधिक उपयुक्त हो सकता है और इसका प्रयोग भी अन्य वाद्यों के साथ

हल्के गीतों के बीच में स्वर-समुदाय देने का होता है। दक्षिण भारतीय संगीत में बेले का प्रयोग अधिकतर गायन की संगत में अवश्य होता है, लेकिन यह बात भूल न जानी चाहिये कि वहाँ के बेलों में धातु के तार प्रयोग नहीं होते वरन् ताँत के तार लगाये जाते हैं।

बीसवीं शताब्दी के लगभग प्रारंभ में स्व० अब्दुल करीम खाँ ने सारंगी बजाना केवल इसलिए छोड़ दिया कि उन्हें हमेशा अपना अस्तित्व खोकर गायकों की संगत करना पड़ता था। हम यह भी जानते हैं कि बाद में करीम खां एक प्रसिद्ध गायक हुये। दूसरी ओर मम्मन खां और उनके भतीजे बिन्दू खाँ भी सारंगी से इसी बात पर ऊबे। निराश होकर उन लोगों ने सारंगी को त्याग नहीं दिया किन्तु अपनी सारङ्गी में कई परिवर्तन कर उसे संगत के अनुपयुक्त और स्वतंत्र-वादन के उपयुक्त बना दिया। स्व० बिन्दू खां ही सर्वप्रथम सारंगी-वादक थे जिन्होंने यह सिद्ध किया कि सारङ्गी स्वतंत्र-वादन के लिए उतना ही उपयुक्त है जितना कि संगत के। आजकल सारङ्गी का स्वतः वादन कार्यक्रम अकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से तथा संगीत सम्मेलनों में प्रचुरता से सुनाई पड़ता है।

इसी प्रकार यूरोप में भी बेला पहले गायन की सङ्गत के उपयुक्त माना जाता था। यूरोप के प्रथम बेला वादक Arcangelo Corelli (1653-1713) इसी मत के अनुयायी थे। लगभग एक शताब्दी बाद विद्वानों का ध्यान स्वतंत्र-वादन की ओर गया और निकोलो पागनी (१७८२-१८४०) प्रथम व्यक्ति थे जिन्होने बेले की स्वतंत्र-वादन क्षमता पर जनता का ध्यान आकर्षित किया और आज सम्पूर्ण यूरोप, अमरीका और एशिया के अधिकांश भागो में बेला स्वतंत्र-वादन के उपयुक्त समझा जाता है।

अब यह प्रश्न उठता है कि बेला कहाँ तक स्वतंत्र-वादन अथवा संगत के उपयुक्त हैं। केवल इस आधार पर कि दक्षिण भारत

में बेले से संगत होती है, उत्तर भारत में भी इस वाद्य से संगत होनी चहिये हमारी अदूरदर्शिता का परिचायक नहीं तो फिर क्या है ?

कुछ विद्वान शास्त्र की शरण लेकर यह कहते हैं कि अनुगत सिद्धवाद्य (गज से बजाये जाने वाले) संगत के तथा स्वयं सिद्ध वाद्य (मिजराब अथवा जवा से बजाये जाने वाले) स्वतंत्र-वादन (Solo performance) के उपयुक्त हैं। क्योंकि गज से बजाये जाने वाले वाद्यों जैसे सारंगी आदि में धारावाहिकता (Continuity) रहती है और जवा आदि से बजाये जाने वाले वाद्यों में जैसे सितार और सरोद में यह बात नहीं रहती।

उपर्युक्त तर्क का उत्तर यह है कि सर्वप्रथम यह कहना कि सारंगी, बेला आदि में धारावाहिकता रहती है और सितार, सरोद में नहीं रहती गलत है। क्योंकि अगर सितार और सरोद में धारावाहिकता नहीं रहती तो किस प्रकार हम यह कहते हैं कि अमुक वादक ने आध घण्टे तक जैजैवन्ती राग की अवतारणा की। दूसरे हम यह प्रत्यक्ष देखते हैं कि सितार अथवा सरोद में एक बार आघात कर देने से उत्पन्न ध्वनि एकाएक समाप्त नहीं हो जाती वरन् धीरे-धीरे समाप्त होती है। समाप्त होने के पूर्व वादक पुनः आघात करता है और फिर पहले के समान ध्वनि-क्रम चलती रहती है। यह स्पष्ट है कि पुनः आघात करने से धारा-प्रवाह में तनिक भी बाधा नहीं पड़ती, वरन् उसमें क्रमशः वृद्धि होती रहती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सितार में समान रूप से धारावाहिकता रहती है। अगर हम थोड़ी देर के लिये यह मान भी लें कि सितार के स्वरों में धारावाहिकता नहीं रहती तो क्या हमें व्यवहार में स्वर एक दूसरे से बिल्कुल अलग सुनाई पड़ते हैं। नहीं वास्तव में हम लोगों को (Pattern of notes) अर्थपूर्ण स्वर समुदाय सुनाई पड़ते हैं। जिस प्रकार हमें वृक्ष के अलग-अलग पत्ते, डाली आदि नहीं दिखाई पड़ते वरन् पूरा एक पेड़ दिखाई पड़ता है। हाँ, इतना अवश्य है कि गज से बजाये

जाने वाले वाद्यों के मूल-स्वरों में जवा से बजाये जाने वाले वाद्यों के मूल-स्वरों की तुलना में अधिक स्थिरता होती है, साथ ही साथ इनमें जवे से बजाये जाने वाले वाद्यों के समान पृथक स्वर (cut notes) भी निकाले जा सकते हैं। इसलिये यह सिद्ध है कि बेला अपनी आधुनिक रूप में स्वतंत्र-वादन के बहुत उपयुक्त है।

पीछे हम इस निष्कर्ष तक पहुँच चुके हैं कि धातु के तार से संगत नहीं हो सकती। अतः संगत के लिये अगर मधुर आवाज वाले बेलों पर ताँत के तार लगाये जायँ तो सफलता प्राप्त हो सकती है। 'मैगनी' के बने हुये अधिकतर बेलों की ध्वनि मधुर होती है अतः ये बेले संगत के योग्य बनाये जा सकते हैं, किन्तु इन सुविधाओं का सरलता से प्राप्त होना कठिन है। अतः इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिकतर बेले संगत के अनुपयुक्त हैं।

चतुर्थ अध्याय

सितार

उत्तर भारतीय तंत-वाद्यों में सितार काफी लोक प्रिय है। पाश्चात्य देश की जनता भी इस वाद्य से धीरे-धीरे परिचित होती जा रही है। दक्षिण भारत में भी इसका प्रचार दिन पर दिन अधिक होता जा रहा है। इसकी ध्वनि मीठी और धीमी होती है, किन्तु विज्ञान के नये-नये अविष्कारों ने इसकी इस कमी को अपरोक्ष रूप में दूर कर दिया है। इसमें सात अथवा आठ मुख्य तार होते हैं तथा पीतल के पर्दे लगे रहते हैं। इसलिये प्रारम्भिक विद्यार्थियों को शीघ्र सफलता मिलना स्वभाविक हैं, किन्तु कुछ वर्षों बाद जैसे-जैसे समय व्यतीत होता जाता है, उन्नति देर में प्राप्त होने लगती है।

(१) **तुम्बा**—यह लौकी अथवा कोंहड़ा का गोलाकार भाग हैं जो सितार के निचले भाग में रहता है। बजाते समय तुम्बा ज़मीन की सतह को स्पर्श करता है। कुछ सितार के तुम्बे चिपटे होते हैं, किन्तु सभी तुम्बे अन्दर से खोखले होते हैं।

(२) **कील**—तुम्बे के नीचे तारों को बांधने के लिये जो वस्तु होती है उसे कील, मोंगरा अथवा लंगोट कहते हैं।

(३) **तबली**—तुम्बे के खुले हुये भाग को ढकने वाली लकड़ी तबली कहलाती है। इसके ऊपर घुरच रहता है।

(४) **घुरच, घोड़ी अथवा ब्रिज**—तबली के ऊपर रक्खी हुई छोटी चौकी जिस पर तार रक्खे जाते हैं, घुरच कहलती है। यह चौकी अधिकतर हाँथी दाँत की होती है तथा इसकी लम्बाई चौड़ाई से लगभग दुगनी होती है। घुरच का ऊपरी सतह जिसके ऊपर से

तार खूटियों की ओर जाते हैं, जवारी कहलाता है। अच्छी जवारी से तारों की झनकार स्पष्ट तथा मधुर होती है।

(५) **डाँड**—तुम्बे के ऊपर की खोखली लकड़ी डाँड कहलाती है। डांड के सिरे पर खूंटियाँ, तारगहन और अटी होती हैं तथा उसकी ऊपरी सतह पर परदे लगे रहते हैं।

(६) **गुल**—वह स्थान जहां पर तुम्बा और डाँड जुड़ता है, गुल अथवा कंठ कहलाता है।

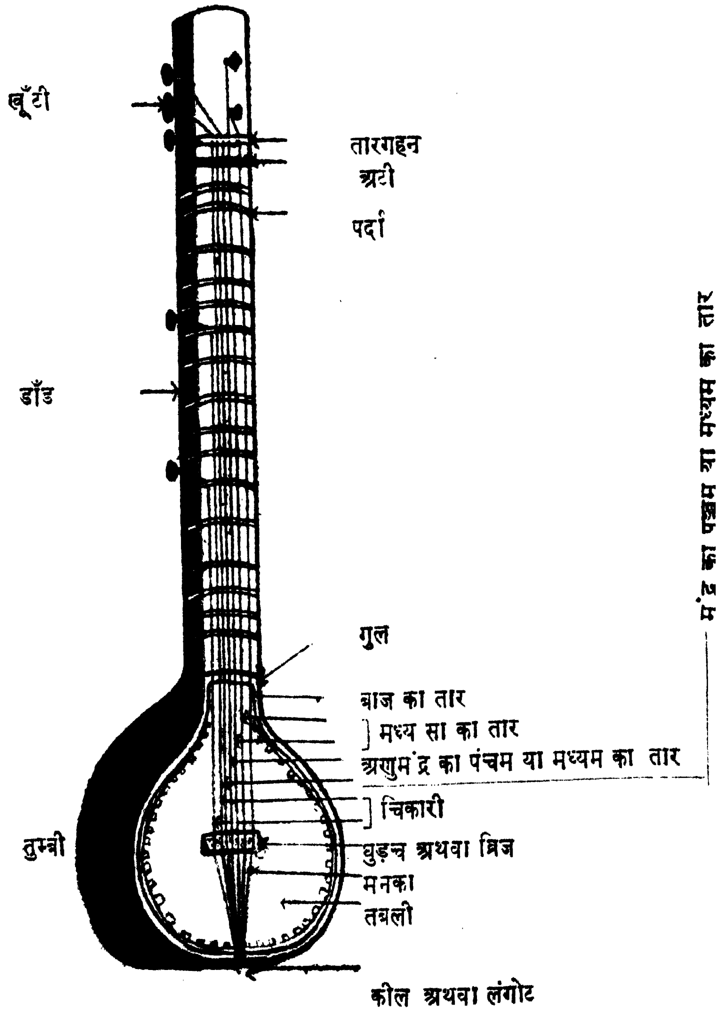
(८) **मनका**—तानपुरे के समान सितार में भी उसके पहले तार में, स्वर को थोड़ा सा उतारने और चढ़ाने के लिये काँच अथवा हाथी दाँत की मोती पिरोई रहती है, जिसे मनका कहते हैं। इसके अनेक आकार होते हैं।

(८) **परदे**—स्वरों का स्थान निश्चित करने के लिये डाँड के अग्र भाग पर लगे हुये पीतल अथवा लोहे की सलाइयों के टुकड़े परदे, कट अथवा सुन्दरी कहलाते हैं। ये तांत अथवा मजबूत डोरे से डांड से बांध दिये जाते हैं। ये परदे कुछ उठे हुये होते हैं। सितार में खूटियों से नीचे की ओर जैसे-जैसे चलते हैं, परदों की ऊँचाई धीरे-धीरे कम होती जाती है। इनकी संख्या सोलह से चौबीस तक होती है।

(६) अटी और तार गहन—डांड के सिरे पर परदों के ऊपर हाथी दाँत की दो पट्टियां होती हैं। पहली पट्टी अटी, अटक अथवा अड़ी कहलाती है जिसके ऊपर से तार खूंटियों की ओर जाते और दूसरी पट्टी तारगहन अथवा तारदान कहलाती है जिसके बीच से तार गुजरते हैं।

(१०) **खूटियाँ**—तारों को कसने के लिये सितार के सिरे पर लकड़ी की कुछ चाबियां लगी रहती हैं, जिन्हें खूंटी कहते हैं। सितार में जितने तार होते हैं, उतनी ही खूंटियाँ होती हैं। दो

सितार



खूँटी
तारगहन
अटी
पर्दा
डाँड
गुल
बाज का तार
मध्य सा का तार
अणुमंद्र का पंचम या मध्यम का तार
म, द, का पञ्चम या मध्यम का तार
चिकारी
तुम्बी
घुड़च अथवा ब्रिज
मनका
तबली
कील अथवा लंगोट

खूंटियां सामने की ओर, तीन बांई ओर ऊपर तथा शेष नीचे होती हैं।

(११) **तरबें**—कुछ अच्छे सितारों में परदों के नीचे कुछ पतले तार लगे होते हैं जिनके लिये डांड के दाहिने ओर अलग खूंटियाँ होती हैं और तबली पर अलग एक छोटा सा घुरच होता है। ये तार बजाये जाने वाले राग के स्वरों में मिलाये जाते हैं, जिससे बजाते समय स्वरों का आस बढ़ जाता है। तरब के सभी तार लोहे के तथा समान मोटाई के होते हैं।

(१२) **मिजराब**—लोहे के तार की बनी हुई वह वस्तु जिसे दाहिने हाथ की तर्जनी में बांध कर सितार बजाते हैं, मिजराब कहलाती है। संकुचित दृष्टि में मिजराब सितार का अंग नहीं कहा जा सकता, किन्तु व्यापक दृष्टि में इसका कुछ और ही स्थान हो जाता है क्योंकि बिना मिजराब के सितार बजाया नहीं जा सकता।

(१३) **तार**—पीछे हम यह बता चुके हैं कि अधिकाँश सितारों में सात तार होते हैं। ये तार तुम्बे के नीचे लगी हुई कील से बँधे रहते हैं तथा घुरच और परदों के ऊपर से होते हुये ऊपर खूँटियों से बँधे रहते हैं। ये तार विभिन्न मोटाई के तथा पीतल अथवा लोहे के होते हैं।

(१) **बाज का तार**—सितार की बाँई ओर से जिधर खूँटियां नहीं होती हैं, प्रथम तार लोहे का होता है, जिसे मन्द्र सप्तक के मध्यम से मिलाते हैं। यह तार अन्य तारों की अपेक्षा में सब से अधिक उपयोगी होता है। गत इसी तार पर बजाई जाती हैं। इसीलिए यह बाज का तार कहलाता है। इसे नायकी का भी तार कहते हैं।

(२) **और (३) जोड़ी अथवा षड्ज के तार**—दूसरे और तीसरे तार पीतल अथवा तांबे के तथा एक ही मोटाई के होते हैं। ये मन्द्र के षड्ज में मिलाये जाते हैं।

(४) **खरज-पंचम का तार**—चौथा तार पीतल का होता है। इसे खरज अथवा अणुमन्द्र के पञ्चम में मिलाते हैं। इसकी मोटाई जोड़ी के तार से अधिक होती है। इसे कुछ लोग खरज का तार भी कहते हैं।

(५) **मन्द्र के पंचम का तार**—यह तार लोहे का होता है, जिसे मन्द्र सप्तक के पंचम में मिलाते हैं। इसकी मोटाई बाज के तार से कम होती है! कुछ सितार-वादक चौथे तार के स्थान पर पाँचवाँ और पांचवें के स्थान पर चौथा तार लगाते हैं!

(६) **प्रथम चिकारी**—छठवां तार लोहे का होता है जो मध्य के षड़ज में मिलाया जाता है। इसे चिकारी का प्रथम तार कहते हैं।

(७) **द्वितीय चिकारी**—यह सितार का अंतिम तार होता है जिसे तार षड़ज में मिलाते हैं। झाला बजाने में इसका अधिक प्रयोग होता है। चिकारी के दोनों तार 'पपैया के तार' भी कहलाते हैं। इस तार की खूँटी अन्य खूँटियों की तुलना में डाँड पर सब से नीची लगी रहती है।

सितार की बैठक

इसके दो मुख्य बैठक हैं, पहली पुरुषों की और दूसरी स्त्रियों की। प्रथम बैठक में बांया पैर दाहिने पैर के जंघे के नीचे रखते हैं और दाहिना पैर बांये पैर के घुटने के ऊपर रखतें है। सितार इस प्रकार से रखते हैं कि उसकी पीठ वादक की ओर रहती हैं और उसका तुम्बा दाहिने जंघे के पास रहता है। तुम्बे पर दाहिना हाथ रखकर सितार को कुछ बाईं ओर तिरछा खड़ा कर देते हैं। दाहिने हाथ का अँगूठा गुल के नीचे तथा तुम्बे के ऊपरी भाग पर इस प्रकार रखते हैं कि तर्जनी बाज के तार तक सरलता से पहुँच जाय। बाँये हाथ का अँगूठा सितार की डांट की पीठ पर रहता है और अन्य शेष

अँगुलियाँ डांड के अग्र भाग पर। बायें हाथ की तर्जनी से परदे के ऊपर के तारों को दबाते हैं।

दूसरी बैठक है स्त्रियों की। इसमें बायां और दाहिना हाथ प्रथम बैठक के समान होता है। किन्तु दोनों पैर बांये ओर इस प्रकार मोड़ते हैं कि बांया पैर दाहिने पैर के ऊपर पड़ता है।

सितार के बोल और उन्हें निकालने की विधि

दाहिने हाथ की तर्जनी में मिजराब पहनकर बाज के तार पर प्रहार करने से जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे बोल कहते हैं। मुख्य बोल दो हैं, दा और रा जिनके विविध मिश्रण और बजाने की विधि में परिवर्तन कर देने से अन्य बोलों की रचना होती है।

(१) **दा**—बाज के तार को बाईं ओर से अपनी ओर खींचते हुये प्रहार करने से 'दा' की ध्वनि निकलती है।

(२) **रा**—यह ध्वनि 'दा' के ठीक उल्टे ढंग से निकलती है। इसमें प्रहार करते हुये तर्जनी को अपने से बाईं ओर ले जाते हैं।

(३) **दिर**—शीघ्रता से 'दा' और 'रा' बजाने से 'दिर' की ध्वनि उत्पन्न होती है। इसे बजाते समय यह ध्यान रहना चाहिये कि 'दिर' बजाने में उतना ही समय लगे जितना कि 'द' अथवा 'रा' के बजाने में लगता है।

(४) **द अथवा दि**—'द' को शीघ्रता से उसके आधे समय में बजाने से 'दा' अथवा 'दि' का बोल निकलता है।

(५) **र अथवा ड़**—'रा' को शीघ्रता से उसके आधे समय में बजाने से 'द' अथवा 'ड़' निकलता है।

(६) **दार**—'दा' को बजाने के बाद 'र' का आधा समय छोड़ देने के बाद शेष आधे समय में 'र' बजाने से 'दार' निकलता है।

(७) द्रा—'दा' और 'रा' एक साथ मिलाकर बजाने से 'द्रा' की ध्वनि उत्पन्न होती है।

सितार के कुछ पारिभाषिक शब्द

ठाट—सितार में विभिन्न स्वर-स्थानों पर विभिन्न परदों को बांधने से ठाट की रचना होती है। ठाट मुख्य दो प्रकार के होते हैं (१) अचल ठाट (२) चल ठाट।

अचल ठाट—इसमें चौबिस पर्दे होते हैं—म़ प़ ध़ ध़ नी़ नी़ सा रे रे ग ग म म प ध ध नी नी सां रें रें गं ग और म। कुछ वादक तेईस पर्दो का प्रयोग इस प्रकार करते हैं कि तार म का परदा हटा देते हैं, किन्तु जब जरूरत पड़ती है तो तार खींचकर मध्यम की उत्पत्ति करते हैं।

चल ठाट—इसमें १६ से लेकर १६ तक परदे होते हैं, इसीलिये आवश्यकत्तानुसार परदों को खसकाने की आवश्यकता पड़ती है।

१६ परदों के ठाट में म़ प़ ध़ नी़ नी़ सा रे ग म म प ध नी सां रें और गं होते हैं।

१७ परदों के ठाट में मन्द्र ध और जोड़ देते हैं।

१८ परदों के ठाट में मध्य सप्तक के कोमल नी का परदा और जोड़ देते हैं।

१६ परदों के चल ठाट में तार में का परदा सम्मिलित कर देते हैं। इस प्रकार १६ और २४ पर्दों में विभिन्न विद्वान अपनी-अपनी रुचि और आवश्यकता के अनुसार परदों की संख्या में परिवर्तन कर देते हैं।

बोल— सितार के तार पर मिजराब से प्रहार करने पर जो ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे बोल कहते हैं। बोलों के प्रकार और उनके निकालने की विधि पिछे दी जा चुकी है।

आकर्ष और अपकर्ष प्रहार—तार पर दो प्रकार से प्रहार करते है, जिन्हें क्रमशः आकर्ष और अपकर्ष कहते हैं। बाहर की ओर से तार पर प्रहार करते हुये दाहिने हाथ की तर्जनी को पीछे लाने की क्रिया आकर्ष प्रहार कहलाती है। इसे सुलट प्रहार भी कहते हैं। इससे 'दा' की ध्वनि निकलती है।

अपकर्ष प्रहार इसकी ठीक उलटी होती है। इसमें तर्जनी अपनी ओर से बाहर की ओर ले जाते हैं जिससे 'रा' की ध्वनि निकलती है।

गत और उनके प्रकार—वाद्यों पर बजाई जाने वाली राग और ताल में बद्ध रचनायें गत कहलातीं हैं। सितार के गतों की यह विशेषता होती है कि उसके प्रत्येक स्वर के निश्चित बोल होते हैं—जैसे,

सासा रे ग ग प

दि ड़ दा दि ड़ दा।

गत के मुख्य दो प्रकार हैं, मसीदखानी और रजारवानी। प्रत्येक के दो-दो भाग अथवा चरण होते हैं, स्थाई और अंतरा। कुछ गतों में केवल स्थाई होती है।

मसीदखानी गत—अमीर खुसरों की वंश परम्परा के मसीद खां ने इस नवीन गत का आविष्कार किया। इस गत का नामकरण इसके आविष्कारक के आधार पर हुआ। मसीद खाँ के पिता फिरोज़ खाँ थे। कुछ विद्वान इसे मसीदखानी गत न कहकर फिरोज़खानी गत भी कहते हैं। मसीदखानी गतें विलंबित लय में होती हैं तथा खाली के तीन मात्राओं के बाद से अर्थात् तेरहवीं मात्रा से प्रारम्भ होती हैं। इसके बोल इस प्रकार होते हैं, दिर, दा दिर दा रा दा दा रा

दिर, दा दिर दा रा दा दा रा। ये बोल मसीदखानी गत में कभी नहीं बदलते। प्राय: किसी भी विलंबित गत को मसीदखानी गत कह दिया जाता है; किन्तु यह गलत है। मसीदखानी गत के लिये पांच मात्राओं का मुखड़ा तथा उपर्युक्त क्रमानुसार बोलों का होना आवश्यक है। इसमें मींड और गमक की अधिक गुँजाइश होती है। वास्तव में फिरोजखानी गत मसीदखानी गत से भिन्न थी। फिरोजखानी गत चारताल में होती थी तथा पखावज के साथ बजाई जाती थी क्योंकि उस समय तक तबले का जन्म नहीं हुआ था। ऐसे तो यह सुनने में बड़ा अजीब मालूम पड़ता है कि सितार ऐसे मीठे वाद्य के साथ पखावज बजता था, किन्तु इसकी सत्यता के अनेक प्रमाण हैं। फिरोजखानी के बोल भी मसीदखानी गत के बोलो से भिन्न थी। धीरे-धीरे मसीदखानी गत का इतना अधिक प्रचार हुआ होगा कि फिरोजखानी गत के बोल पूर्णतया भुला दिये गये। उस समय मसीदखानी गत भी पखावज के साथ बजाई जाती थी, इसलिये मसीदखानी गत में विभिन्न मात्राओं से उठने वाली परनों के आधार पर तोड़े बजाई जाती थीं। किन्तु आज-कल यह प्रथा बहुत कुछ बदल चुकी है। वादक स्वरचित तोड़ो का प्रयोग करने लगे हैं।

रजाखानी गत—गत का यह प्रकार मसीदखानी गत के बिल्कुल विपरीत द्रुत-लय में बजाई जाती है। अतः यह मसीदखानी के समान गंभीर न होकर चंचल प्रकृति का होता है। इसमें वादक को अपनी इच्छानुसार तान अथवा तोड़े बजाने की पूरी स्वतंत्रता रहती है। इसके बोल भी मसीदखानी गत के समान पूर्व निश्चित तथा अपरिवर्तनीय नहीं होते वरन् आवश्यकतानुसार विभिन्न चाल के बोल प्रयोग किये जाते हैं, जैसे—दा दिर दारा, दिर दिर दार दा, आदि। रजारवानी गत में वादक अपनी तैयारी दिखाता है, तथा गत के अंत में झाला प्रयोग करता है। रजारवानी गत को पूर्वी बाज और मसीदखानी गत को दिल्ली अथवा पश्चिमी बाज भी कहते हैं।

कुछ लोग गत का तीसरा प्रकार अमीरखानी मानते हैं, किन्तु अधिकांश विद्वान अमीरखानी और मसीदखानी में कोई अंतर नहीं समझते।

जमजमा—यह एक प्रकार का कण हैं, जिसमें तर्जनी और मध्यमा दोनों का प्रयोग होता है। सितार में किसी भी स्वर के परदे पर बायें हांथ की तर्जनी रखकर तथा दाहिने हाथ से दा अथवा रा बजाते हुये आगे के स्वर पर मध्यम अंगुली रखकर शीघ्रता से हटा लेने से उत्पन्न ध्वनि को जमजमा कहते हैं।

झाला—यह मुख्यतः सितार और सरोद की चीज है। इसे रजारवानी के अंत में द्रुत-गति में बजाया जाता है। चिकारी के तार पर दायें हाथ की तर्जनी अथवा कनिष्ठा से रा रा बजाने को झाला कहते हैं। झाला बजाते समय बहुधा बाज का तार भी प्रयोग में आता है। बाज के तार पर दा और चिकारी पर रा रा बजाते हैं। कभी-कभी दायें हाथ से बाज और चिकारी के तार बजाते समय बायें हाथ से झाले के बीच में अन्य स्वर भी बजाये जाते हैं। झाले में चिकारी और बाज के तार के अतिरिक्त अन्य तारों की ध्वनि कम रहती है। दा रा रा के परिवर्तन से झाले के विभिन्न प्रकार बनाये जाते हैं। बोल की दृष्टि से झाले के मुख्य दो प्रकार हैं। (१) सुलट और (२) उलट। प्रथम प्रकार के झाले में पहले बाज के तार पर 'दा' और तब चिकारी पर 'रा' बजाते हैं। दूसरे प्रकार में पहले बाज के तार पर 'रा' और तब चिकारी पर 'दा' बजाते हैं।

मींड और सूत—किसी एक स्वर से दूसरे स्वर तक इस प्रकार जाने को मींड कहते हैं कि ध्वनि खंडित न हो। कुछ विद्वानों के अनुसार वाद्यों में पास के स्वरों को अखंडित ध्वनि को मींड और दूर के स्वरों की अखंडित ध्वनि को सूत कहते हैं। गायन में इस प्रकार का भेद नहीं किया जाता और दोनों ही मींड कहलाते हैं। गमक का एक प्रकार 'प्लावित गमक' ही मींड है। सितार, वीणा आदि में एक ही परदे से

तार खींचकर मींड निकालते हैं, किन्तु सारंगी बेला आदि ऐसे वाद्यों में तार खींचे नहीं जाते वरन् एक स्वर से दूसरे स्वर तक अंगुलियों को धीरे से खिसका कर मींड निकालते हैं। मींड के मुख्य दो प्रकार हैं, अनुलोम और विलोम। अनुलोम मींड में सितार बजाते समय बायें हाथ की तर्जनी किसी स्वर के परदे पर रहती है और मिजराब से आघात करने के बाद तार को खींचते हैं और उसी परदे पर इच्छित स्वर की उत्पत्ति होती है, उदाहरणार्थ बायें हाथ की तर्जनी म के परदे पर रखकर सर्वप्रथम मिजराब से आघात करें और उसके बाद बाज के तार को केवल इतना खींचे कि म के परदे पर पंचम की ध्वनि उत्पन्न हो। विलोम मींड इसकी उलटी होती है। इसमें पहले बाज के तार को किसी स्वर के परदे से खींचते हैं और तत्पश्चात् दा अथवा रा बजाकर उस स्वर तक लौट आते हैं। दूसरे मतानुसार सितार की मींड को बेला, सारङ्गी आदि में सूत या घसीट कहते हैं।

जोड़—सितार के आलाप का वह भाग जो लय में होता है जोड़ कहलाता है। जोड़ के अर्थ हैं 'जोड़ना'। सितार का आलाप बहुत कुछ ध्रुपद के आलाप से मिलता-जुलता है। मोटे तौर से आलाप चार भागों में बाँटा जा सकता हैं, स्थाई, अंतरा, संचारी और आभोग। आलाप के बीच-बीच में जब सा पर लौट आते हैं तब आवश्यकतानुसार किसी स्वर पर ज़ोर देते हैं, जिसे सम देना कहते हैं।

स्थाई में मध्य और मन्द्रसप्तक में मींड, कण, जमजमा आदि के साथ विलंबित लय में स्वरों की बढ़त करते हैं।

अन्तरा में तार सप्तक तक धीरे-धीरे पहुँच जाते हैं और बहुधा तीनों सप्तकों का प्रयोग करते हैं। स्थाई के लय की अपेक्षा अन्तरा में लय कुछ बढ़ जाती है तथा कण, मींड, जमजमा आदि के साथ-साथ गमक का महत्त्व बढ़ जाता है।

संचारी से आलाप धीरे-धीरे लय में होता जाता है, और इसी स्थान से जोड़ भी प्रारम्भ हो जाता है। इसमें धीरे-धीरे चिकारी का प्रयोग अधिक होता जाता है। इसमें तीनों सप्तकों का प्रयोग स्वतंत्रता पूर्वक होता है और स्वर-समुदाय की विविधता पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

आलाप अथवा जोड़ का अन्तिम भाग आभोग कहलाता है। इसमें लय तथा चिकारी का काम और भी अधिक बढ़ जाता है। इस आलाप के बीच में छोटे-छोटे तान लगाते हुये सम दिखाते है। तानों की लम्बाई धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। अन्त में विभिन्न प्रकार के झाले प्रयोग करते हैं। इस प्रकार वादक अपने अधिकतम लय में पहुँचकर आलाप समाप्त करते हैं, और उसके बाद गत प्रारम्भ करते हैं।

घसीट—इसका अर्थ है तार पर अंगुली को घसीटना। सितार में किसी एक स्वर से आगे के किसी अन्य स्वर तक शीघ्रता से इस प्रकार जाने को घसीट कहते हैं कि बीच के सभी परदे क्रमशः स्पर्श होते हुये जायँ और बाँया हाथ न उठे, किन्तु उनकी ध्वनि कानों को अप्रिय न लगे और केवल प्रारंभ और अंत के स्वर स्पष्ट रूप से सुनाई पड़े। उदाहरणार्थ स से प तक के घसीट में तर्जनी सभी परदों के ऊपर से इतनी शीघ्रता से गुजरे कि बीच के स्वर स्पष्ट रूप से बिल्कुल न सुनाई पड़े और केवल स और प की ध्वनि मालूम हो।

पुकार—इसके मुख्य दो अर्थ हैं। प्रथम अर्थ में किसी भी स्वर-समुदाय को शीघ्रता से दो सप्तकों में बजाने को पुकार कहते हैं जैसे—(१) सां गं रें गं रें सां, सा ग रे ग रे सा (२) गं—रें सां, ग—रे सा।

इसके दूसरे अर्थ में किसी भी स्वर सप्तक में कुछ स्वरों की गुत्थी बनाते हुये किसी बीच के स्वरों को लम्बाकर इस प्रकार बजाने को पुकार कहते हैं, जैसे मानों कोई व्यक्ति स्वर के द्वारा किसी को

बुलाना चाहता हो, जैसे—सा रे ग रे ग—रे सा, म—ग रे ग—रे सा, ग—रे सा, म—ग रे ।

तोड़ा—जिस प्रकार गायन में द्रुत स्वर-हमूहों के विशिष्ट प्रयोग को तान कहते हैं, इसी प्रकार सितार पर द्रुत गति में बजाये जाने वाले स्वर-समूह तोड़ा कहलाते हैं । कठिन तोड़े फिकरा कहलाते हैं ।

लाग डाट—इसके अर्थ में विद्वानों के अनेक मत हैं ।

प्रथम मतानुसार किसी राग के मुख्य अथवा राग-वाचक स्वर-समुदाय को बार-बार प्रयोग करने को लाग-डाट कहते हैं, जैसे जौनपुरी राग में रे म प । सा

स, रे म प, पम प ग ऽ रे म प, रेमपध म प ग रे म प,
स

म प नी ध प म प ग रे म प, सा—सा रे म प आदि । इस स्वर समुदाय में रे म प की पुनरावृत्ति जौनपुरी की द्योतक है ।

दूसरे मतानुसार आरोह के घसीट को लाग और अवरोह के घसीट को डाट कहा गया है । उदाहरणार्थ जब स से प की घसीट लेंगे तो लाग और जब प से स की घसीट लेंगे तो डाट होगी ।

तीसरे मतानुसार इसे पुकार के प्रथम अर्थ का पर्याय माना गया है अर्थात् एक ही स्वर समुदाय को दो सप्तकों में शीघ्रता से बजाना ।

तार परन—किसी भी राग के वादी-संवादी तथा राग-वाचक स्वरों का ध्यान रखते हुये परवावज के परन पर आधारित स्वर-समुदाय के प्रयोग को तार परन कहते हैं । तार परन का प्रयोग आलाप के अन्तिमभाग में होता है ।

लड़न्त—स्वर के तार पर पखावज के बोल पर आधारित रचना बजाने की क्रिया को लड़न्त कहते है । लड़न्त का प्रयोग गत के बीच

में होता है तथा इसके अन्त में तिहाई रहती है। लड़न्त प्रारम्भ से अन्त तक एक ही लय में रहती है।

लड़ी—कुछ सीमित स्वरों की परिधि में स्वरों के विविध घुमाव-फिराव को लड़ी कहते हैं, जैसे—साग रेग रेसा, साग साग रेग मा, सग गग सग गग सग साग साग रेग रेसा आदि। सितार पर लड़ी का प्रयोग तार खींच कर होता है।

गुत्थी—यह एक प्रकार की लड़ी है। किसी स्वर-समुदाय के बीच में स्वर छोड़-छोड़ कर लड़ी बनाने को गुत्थी कहते हैं, जैसे—सग रेग रेसा, साग रे ग रे ग रेसा, प नी धनी धप, पनी धनी धनी धप।

लड़-गुथाव—तबले के रेले के समान विभिन्न लड़ियों को एक में गूथ देने को लड़-गुथाव कहते हैं।

लड़ी के बीच में घसीट के प्रयोग करने से लड़-घसीट होता है तथा लड़ी के बीच में चिकारी के प्रयोग को लड़-झाला कहते हैं।

छूट—किसी स्वर पर थोड़ा रुकने के बाद शीघ्रता से नीचे अथवा ऊपर जाने को छूट कहते हैं, जैसे—सां—धप म ग रे सा, ग—रें सां नी ध प म ग रे सा।

कृन्तन—इसका प्रयोग मुख्यत, सितार में होता है। बांये हाथ से काटकर शीघ्रता से दो, तीन अथवा चार स्वरों के समूह को बजाने को कृन्तन कहते हैं जैसे रेसानी। मिजराब के केवल एक ही आघात से कृन्तन बजाया जाता है। दो स्वरों का कृंतन रे स, तीन स्वरों का रे सा नी और चार स्वरों का कृंतन रे सा नी सा होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि जमजमा, मुर्की और गिटकिड़ी, तीनों का समावेश कृन्तन में होता है।

कस्बी और अताई—योग्य गुरू से भली-भांति शिक्षा पाने वाला शिष्य कस्बी और किसी योग्य गुरू से न शिक्षा पाने वाला अथवा दूसरे शब्दों में इधर-उधर से सुनकर गाने-बजाने वाला व्यक्ति अताई कहलाता है।

गमक—एक विशेष प्रकार के मधुर कंपन को गमक कहते हैं। गमक के पन्द्रह प्रकार हैं, जिनमें से अधिकांश का प्रयोग आज भी उत्तरी भारतीय संगीत में होता है, किन्तु अंतर यह है कि उनका प्रयोग प्राचीन नामों से नहीं होता है। उन्हें आधुनिक नाम दिये गये हैं जैसे मींड, आन्दोलन, जमजमा, मुर्की, कण आदि।

सितार का संक्षिप्त इतिहास

सितार के जन्म के विषय में विद्वानों में अनेक मत हैं। अभी तक किसी भी मत के पक्ष में कोई ठोंस प्रमाण नहीं प्राप्त हो सका है। कुछ विद्वानों के मतानुसार इसका निर्माण वीणा के एक प्रकार के आधार पर हुआ है। भारतीयता को महत्व देने वाले भारतीय विद्वान इस मत को सहज में ही मान लेते हैं। दूसरे मतानुसार इसका आविष्कार चौदहवीं शताब्दी में अलाउद्दीन खिलजी के दरबार के हज़रत अमीर खुसरो ने मध्यमादि वीणा पर तीन तार चढ़ा कर सितार को जन्म दिया। उस समय उसका नाम 'सहतार' रक्खा गया। फारसी में 'सह' के अर्थ तीन होते हैं। धीरे-धीरे सहतार बिगड़ते-बिगड़ते सितार हो गया और तीन तार के स्थान पर सात तार अथवा आठ तार लगाये जाने लगे। तीसरे मतानुसार सितार पूर्णतया अभारतीय वाद्य है। यह वाद्य परशिया से भारत में आया। एक तार, दो तारा, सहतारा, चहरतारा, पचतारा क्रमशः एक, दो, तीन, चार अथवा पाँच तार वाले वाद्य आज भी परशिया के लोक संगीत में व्यवहृत हैं। इस मत के अनुयायी लखनऊ के प्रो० जी० एन० गोस्वामी हैं। उन्हीं के शब्दों में '......सितार की उत्पत्ति ग्रीक व अरब दोनों के योग से मानी जाती है। असीरिया में किथारों, ग्रीक देश में किथारा, मध्यकालीन यूरोप में साइथार या जाइथर और फारस देश में रोह-तार वाद्यों का प्रयोग था। भारत में सहतर, सहतार और बाद में सितार प्रसिद्ध हुआ।' Chriastain Darton ने अपनी

पुस्तक 'यू एन्ड म्यूज़िक' में इसी मत का प्रतिपादन किया है। संभव है चौदहवीं शताब्दी में इस वाद्य के प्रचार में अमीर खुसरो का विशेष हाथ रहा हो।

अमीर खुसरो की वंश और शिष्य-परम्परा में सितार का प्रयोग होता रहा। केवल प्रयोग ही नहीं अपितु उसके बाज को एक निश्चित रूप देने का प्रयत्न किया गया। इस दिशा में सर्वप्रथम फिरोज खां का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने चारताल में गत की एक विशिष्ट शैली को जन्म दिया। यह गत और उस गत के बजाने की वादन-शैली क्रमशः फिरोज़खानी गत और फिरोज़खानी बाज कहलाई। इस प्रकार की गत के साथ पखावज का प्रयोग होता था और गत के बोल भी निश्चित होते थे जिस प्रकार कि आजकल मसीतखानी के बोल निश्चित हैं। आज जब कि तबले का सर्वत्र प्रचार है और पखावज लगभग समाप्त सा है, ऐसे समय में सितार के साथ पखावज की संगत लोगों को अवश्य खटकेगी। किन्तु उस समय के लिये यह खटकने वाली बात नहीं थी क्योंकि तबले के जन्म के पश्चात कुछ वर्षों तक तबला अपनी बाल्यावस्था में अवश्य रहा होगा और लोगों ने धीरे-धीरे तबला बजाना प्रारम्भ किया होगा। दूसरे वीणा भी तो पखावज के साथ बजाई जाती थी। तीसरे तबले का जन्म होते ही पखावज का प्रचार समाप्त न हुआ होगा कुछ दिनों तक दोनों ओर से खिंचाव (tension) की अवस्था अवश्य रही होगी। चौथे अगर सितार के साथ पखावज न बजाया जाता होता तो फिरोज़खानी गत चारताल में कभी भी नहीं होती।

फिरोज़ खां के पुत्र मसीद खां अथवा मसीत खां थे। उन्होंने गत को एक दूसरा नया रूप दिया जो कि मसीदखानी गत कहलाई। उनकी नवीन वादन-शैली मसीदखानी बाज कहलाई। यह गत तीन ताल में थी तथा तबले के अनुकूल थी। अतः मसीदखानी गत का विकास तबले के साथ-साथ हुआ। धीरे-धीरे तबले

का तथा मसीदखानी गत का इतना अधिक प्रचार हुआ कि फिरोज़ खानी गत के बोल पूर्णतया भुला दिये गये।

एक ओर अमीर खुसरो की शिष्य और वंश-परम्परा में और दूसरी ओर तानसेन की शिष्य और वंश-परम्परा में सितार बजाया जाता रहा। तानसेन की वंश और शिष्य परम्परा सेनी घराना कहलाई। तानसेन के वंशज अमृतसेन और निहालसेन को जो जयपुर में रहा करते थे, सितार के रूप में संशोधन और परिवर्धन का विशेष श्रेय मिलता है। इन लोगों ने सितार के प्रचार में भी बहुत हाथ बटाया। अमीर खाँ जयपुर के अन्तिम तंत्रकार थे। सितार के प्रचार में इनका नाम कभी भी भुलाया नहीं जा सकता। इन्होंने मध्य-लय में एक नवीन गत चलाई जो अमीरखानी कहलाई, किन्तु इसके बोल मसीदखानी गत के ही समान थे इसलिए कुछ दिनों बाद अमीरखानी और मसीदखानी गत में कोई विशेष अन्तर न होने की वजह से 'अमीरखानी' शब्द का प्रयोग बन्द कर दिया गया और 'मसीदखानी' शब्द का प्रयोग जारी रक्खा गया। कुछ दिनों बाद मसीदखानी बाज दिल्ली-बाज कहलाई, और उसकी मुख्य विशेषता विलंबित-लय समझी गई। लखनऊ के गुलाम रजा खाँ ने द्रुत-लय की गत का आविष्कार किया, जो कि उन्हीं के नाम पर रजाखानी गत कहलाई। उनकी वादन-शैली रजाखानी बाज अथवा पूर्वी बाज कहलाई।

सितार के घराने

पीछे के प्रकरण से यह स्पष्ट है कि सितार के दो मुख्य घराने हैं (१) अमीर खुसरो घराना। और (२) सेनी घराना।

हम यह बता चुके हैं कि प्रथम घराने में फिरोज खाँ और मसीद खां हुये। कुछ विद्वान फिरोज खां को अमीर खुसरो का पुत्र मानते

हैं, किन्तु फिरोज खां के पुत्र मसीद खाँ के विषय में कोई मतभेद नहीं है। मसीद खाँ के पुत्र का नाम बहादुर खाँ था। वे बीणाकार थे। दिल्ली के सैय्यद सफ़दर हुसैन कृत फारसी की पुस्तक 'कानून सितार' में यह वर्णन हैं कि बहादुर खाँ मसीत खां के पुत्र थे तथा एक उच्चकोटि के वीणाकार थे। कुछ दिनों बाद उनके हाथ में तकलीफ होने के कारण उन्हें वीणा बजाना बंद कर देना पड़ा। अतः उन्होंने दिल्ली की बीबी जान को सितार पर वीणा की सभी चीजें सिखा दी। इस घराने के विषय में आगे कोई जानकारी नहीं मिलती।

सितार का दूसरा मुख्य घराना है, सेनी घराना। ऐसा कहा जाता है कि तानसेन के द्वितीय पुत्र सूरतसेन के वंशज रहीमसेन थे। रहीमसेन के पुत्र अमृतसेन और निहालसेन थे। अमृतसेन छोटे थे और निहालसेन बड़े थे। अमृतसेन ने अपने पिता के अतिरिक्त बड़े भाई निहालसेन से भी संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। निहालसेन अपनी विद्वता के कारण खलीफा निहालसेन कहलाते थे। अमृतसेन के प्रमुख शिष्य थे अमीर खां और इनके शिष्य थे बरकत उल्ला और इमदाद खां। इन दो शिष्यों की दो पृथक धारायें चल पड़ी। इमदाद खाँ के पुत्र और शिष्य थे स्व० इनायत खां। इनायत खां अपने समय के बहुत अच्छे सितारिये थे। इन्होंने सितार की वादन शैली को बहुत कुछ सुधारा और उसमें आवश्यकतानुसार गायकी का समावेश किया। इनकी मृत्यु कुछ ही वर्षों पूर्व हुई है। इनायत खां के तीन शिष्य थे, प्रथम उन्हीं के पुत्र विलायत खां, दूसरे ध्रुव तारा जोशी और तीसरे कलकत्ते के बिमल कान्त राय चौधरी। दूसरी ओर बरकत उल्ला के शिष्य हुये स्व० आशिक अली खां। आशिक अली गाना गाते थे और अपने जीवन के बहुत दिनों बाद उन्होंने सितार बजाना प्रारम्भ किया था। उनके चार प्रमुख शिष्य हैं, अनवरी बेगम, रसूलन बाई, कलकत्ते के मुस्ताक अली और लखनऊ के गोपी नाथ गोस्वामी। गोस्वामी जी ने सर्वप्रथम आशिक अली खां से सितार

वादन सीखा किन्तु कुछ ही दिनों बाद उन्होंने बेला बजाना शुरू कर दिया और उच्च कोटि के बेला-वादक हुये।

तीसरी ओर अमीर खां के वंशज अब्दुल गनी थे। इनके शिष्य हैं लखनऊ के यूसुफ खां।

इधर कुछ सरोद वादकों ने भी सितार सिखाना शुरू किया। इस दिशा में उल्लेखनीय नाम है, मैहर के उस्ताद अलाउद्दीन खाँ, स्व० करामत उल्ला खां और स्व० सखावत हुसेन खां। अलाउद्दीन खां नृत्यकार पंडित उदय शंकर के छोटे भाई पंडित रवि शंकर को सितार की शिक्षा दी। आज उनकी गणना भारत के प्रमुख सितार वादकों में है। उनमें स्वर लगाव और आलाप चारी का ढंग विशेष है। उनकी वादन-शैली में सरोद और गायकी की छाप है। पन्डित रवि शंकर आज कल आकाश वाणी के दिल्ली केन्द्र में नियुक्त हैं।

स्व० करामत उल्ला खां के छः प्रमुख शिष्य थे। प्रयाग के स्व० गणेश प्रसाद द्विवेदी, गगन चन्द्र चटर्जी और मुनीम जी, उनके भान्जे लखनऊ के स्व० सखावत हुसैन खां, उनके पुत्र इश्तियाक अहमद और चुन्ने खां। गणेश प्रसाद द्विवेदी और चुन्ने खां को सितार, गगन चन्द्र चटर्जी (गगन बाबू) सखावत हुसैन और इश्तियाक अहमद को सरोद तथा मुनीम जी को हारमोनियम बजाना सिखाया। गगन बाबू ने कुछ दिनों बाद बेला बजाना प्रारम्भ किया, इसीलिये उनके बेला-वादन में सरोद की छाया यत्र-तत्र दिखाई पड़ती थी। शायद मुनीम जी ने पहले उनसे सरोद सीखा हो, किन्तु वे हारमोनियम अच्छी बजाते थे तथा इसी क्षेत्र में उनका विशेष नाम था। सखावत हुसैन खां की मृत्यु कुछ ही दिन पूर्व हुई है। उन्होंने अपने पुत्र इलियास खां को सितार की शिक्षा दी। वर्तमान सितार वादकों में बम्बई के अब्दुल हलीम जाफर का महत्वपूर्ण स्थान है। कण और स्वर समुदायों की विविधता तथा तैयारी उनके सितार वादन की विशेषता है।

पंचम अध्याय

पाश्चात्य स्वरलिपि—पद्धति

संगीत सदैव मुख्यतः क्रियात्मक रहा है। क्रियात्मक संगीत को शास्त्र के रूप में परिणत करने के लिये स्वरलिपि अथवा स्वरांकन-प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। इसमें संगीत की और युग की आवश्यकतानुसार संवर्धन और परिवर्धन भी होते रहे। इतना ही नहीं प्रारम्भ से आज तक के समय में अनेक शैलियों का जन्म, विकास और ह्रास हुआ। प्रत्येक नवीन शैली को अधिक पूर्ण बनाने का प्रयत्न किया गया और आज भी केवल भारतीय संगीत में ही नहीं वरन् पाश्चात्य संगीत में भी वहां की स्वरलिपि-पद्धति को अधिक पूर्ण, सरल और वैज्ञानिक बनाने के लिये प्रयत्न हो रहे हैं। जहाँ किसी देश का अथवा किसी काल का क्रियात्मक संगीत का पहुँचना लगभग असम्भव सा है, वहाँ स्वरलिपि-पद्धति द्वारा क्रियात्मक संगीत का थोड़ा बहुत आभास अवश्य सी मिल सकता है। दूसरे स्वरलिपि-पद्धति एक ओर जहां क्रियात्मक संगीत द्वारा नियन्त्रित होती है वहाँ दूसरी ओर क्रियात्मक संगीत के वाह्य रूप को अक्षुण्य बनाने का प्रयत्न भी करती है। दक्षिण भारतीय संगीत इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

प्रारम्भ से आजतक संसार के सम्पूर्ण स्वरलिपि पद्धतियों को चार मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) सोल्फा स्वरलिपि-पद्धति (Solfa Notation System)
(२) न्यूमस स्वरलिपि-पद्धति (Neumes Notation System)
(३) चीव्ह स्वरलिपि-पद्धति (Chievh Notation System)

(४) स्टाफ स्वरलिपि-पद्धति (Staff Notation System)

संक्षेप में इन चारों पद्धतियों पर विचार कर लेना अप्रासंगिक न होगा।

(१) **सोल्फा स्वरलिपि-पद्धति**—सोल्फा का शाब्दिक अर्थ है प और म। पाश्चात्य देशों में प को Sol और म को Fa कहते हैं। इसलिये सोल्फा स्वरलिपि-पद्धति का यह अर्थ हुआ कि वह पद्धति जिसमें स्वर नामों जैसे स, रे, ग, म आदि का प्रयोग होता हो। अतः उत्तर भारतीय स्वरांकन-पद्धति इसी श्रेणी में आती है। कुछ दिनों पूर्व तक सोल्फा नोटेशन सिस्टम का प्रयोग पाश्चात्य देशों में होता था, किन्तु जब से स्टाफ नोटेशन का आगमन हुआ, यह पद्धति विलीन हो गई। भारतीय स्वरलिपि-पद्धति की विशेषतायें स्वयं सोल्फा पद्धति की विशेषतायें कही जा सकती हैं। स्वरित, अनुदात्त स्वरों में लिखने की वैदिक पद्धति इसी के अन्तर्गत आती है। इसका कारण यह है कि वैदिक काल में जब केवल तीन स्वर थे, उनका प्राचीन नाम उदात्त (ऊंचा), अनुदात्त (नीचा) और स्वरित (संमिश्र अर्थात बीच का) था। मेरा तात्पर्य स्वर के किसी विशेष नाम से नहीं है। नाम कुछ भी रक्खा जा सकता है।

(२) **न्यूमस स्वरांकन पद्धति**—इस पद्धति का जन्म मिश्र में और विकास यूरोप में हुआ। इसमें सोल्फा-पद्धति के समान स्वर नामों का प्रयोग नहीं होता था, केवल गीत के शब्द प्रयोग किये जाते थे। शब्दों के ऊपर उनका काल-मान चिन्ह होता था। इन चिन्हों को दिखाने के लिये स्वल्प विराम (,). पूर्ण विराम (.) आदि चिन्हों का प्रयोग होता था। स्वल्प विराम अर्थात् लघु एक मात्रा और पूर्ण विराम अर्थात् गुरू दो मात्रा प्रदर्शित करता था। एक मात्रे में दो स्वरों को लिखने के लिये उन पर ⌒ इस प्रकार का चिंह लगा देते थे। साधारणतया दो स्वरों के बीच का कालांतर समान माना जाता था। किन्तु स्वरों की ऊंचाई अथवा निचाई के

लिये कोई विशेष चिन्ह न था। केवल जो स्वर जितना ही अधिक ऊंचा होता था, उसका संकेत-चिन्ह उस अक्षर से उतना ही अधिक ऊंचा होता था। इसके विपरीत जो स्वर जितना ही नीचा होता था, उसका संकेत-चिन्ह उस अक्षर से उतना ही पास होता था। अतः स्वरों की ऊंचाई-निचाई केवल अक्षर और उसके संकेत-चिन्हों की दूरी पर आधारित थी।

इस स्वरलिपि-पद्धति से यह लाभ अवश्य हुआ कि क्रियात्मक संगीत को थोड़ा बहुत शास्त्र रूप दिया जा सका और संगीत के विद्यार्थियों को नये गीत याद करने में कुछ सरलता प्राप्त हो सकी। किन्तु स्वरों के चिन्ह निश्चित न होने के कारण स्वयं रचियिता को कुछ दिनों बाद अपनी लिखी हुई चीज पढ़ने में कठिनाई होती थी तथा दूसरे व्यक्ति अपनी-अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार उसमें परिवर्तन करते थे। फलस्वरूप इस स्वरांकन-पद्धति से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

धीरे-धीरे सांस्कृतिक विकास के साथ-साथ संगीत का भी विकास हुआ। अतः न्यूमस स्वरांकन-पद्धति में संशोधन और परिवर्धन वांछनीय हो गया। अतः स्टाफ स्वरांकन-पद्धति का प्रादुर्भाव हुआ।

(३) **चीव्ह स्वरलिपि-पद्धति**—इस पद्धति का नामकरण इसके अविष्कारक फ्रान्स के चीव्ह नामक गणितज्ञ के आधार पर हुआ है। इन्होंने १८वीं शताब्दी में इस नवीन स्वरलिपि-पद्धति की कल्पना की। इस पद्धति में उन्होंने गणित के अंकों का सहारा लिया। वर्तमान काल में भी इस पद्धति का प्रचलन फ्रांस के कुछ भागों में है। इस पद्धति से भी भारत अनभिज्ञ नहीं है। सामवेद की ऋचाओं पर १, २, ३, ४, आदि अंकों का प्रयोग मिलता है। भारतीय संगीत की कुछ प्राचीन पुस्तकों में इस पद्धति का प्रयोग मिलता है।

(४) **स्टाफ स्वरांकन-पद्धति**—पीछे हम कह चुके है कि स्टाफ स्वरांकन-पद्धति का मूल न्यूमस स्वरलिपि-पद्धति है। इसकी कमियों

को लोगों ने अनुभव किया और फलस्वरूप स्टाफ-पद्धति का जन्म हुआ। स्टाफ-पद्धति का वर्तमान रूप पिछली कई परिवर्तनों का परिणाम स्वरूप है।

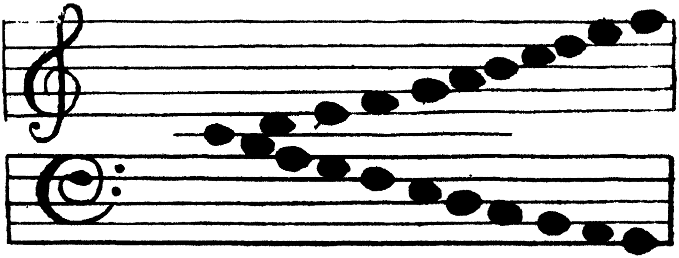
सर्वप्रथम स्वरों की ऊँचाई (Pitch) को निश्चित करने के लिए, न्यूमस चिन्हों पर एक रेखा खींची गई, जो मध्यम अर्थात् F (पाश्चात्य देशों में म को यफ कहते हैं) की रेखा मानी गई। इसका उपयोग काफी दिनों तक हुआ, किन्तु पुनः इसकी अपूर्णता का अनुभव हुआ। इसलिये सर्वप्रथम एक रेखा C अर्थात् स की और तत्पश्चात् दो और रेखायें क्रमशः दो बार में जोड़ी गईं। इस प्रकार कुल चार रेखाएँ हो गईं। पहले इन रेखाओं को पृथक रूप में प्रदर्शित करने के लिए काले और पीले रंग का प्रयोग होता था, किन्तु बाद में रंग के स्थान पर रेखाओं के सामने F, G, और C लिखने लगे। अंत में एक और नवीन रेखा सम्मिलित कर आधुनिक स्टाफ स्वरलिपि-पद्धति का आविष्कार हुआ।

पाश्चात्य संगीत के विकास में वहाँ के चर्चों का विशेष महत्व रहा है। अतः धार्मिक संगीत में सामूहिक-गायन, पार्श्व-संगीत और वृन्दवादन (Orchestra) का विशिष्ट स्थान ग्रहण करना स्वाभाविक था। समूह में स्त्री, पुरुष, बालक, बालिकाओं सभी का समावेश होता है और यह भी स्पष्ट है कि उनके स्वर एक दूसरे से पृथक होते हैं। इसलिए सभी प्रकार के कंठों की स्वरलिपि करने के लिये पाँच से छः और छः से ग्यारह रेखाओं की कल्पना की गई। इस ग्यारह रेखाओं के नवीन रूप को ग्रेट स्टेव (Great Stave) या ग्रेट स्टाफ (Great Staff) की संज्ञा दी गई।

ग्यारह समानान्तर रेखाओं की सहायता से तीनों सप्तकों और प्रत्येक प्रकार के कंठ-स्वरों को प्रदर्शित करने में सुविधा तो हो गई, किन्तु प्रत्येक बार ग्यारह रेखायें खींचनी पड़ती थी। कभी-कभी जब केवल एक ही प्रकार के कंठ-स्वरों को प्रदर्शित करना होता तो

इसकी असुविधाओं का अधिक आभास होता। अतः इसे सरल बनाने का प्रयत्न किया गया। ग्यारह रेखाओं के दो विभाग इस प्रकार किये गये कि प्रत्येक विभाग में पांच-पाँच रेखायें आईं और छठवीं रेखा दोनों विभागों में उभयनिष्ठ (Common) मानी गई। इन दो विभागों के दो सप्तक बन गये। आवश्यकतानुसार किसी भी सप्तक का प्रयोग केवल पाँच रेखा खींच कर हो सकता था। ऊपर से प्रथम सप्तक ट्रबिल अथवा जी क्लेफ (Treble or G Clef) कहलाया और दूसरा बास अथवा यफ क्लेफ (Bass or F Clef) कहलाया। दोनों की रचना में क्रमशः पाँच-पाँच रेखायें खींचनी पड़ती थी और छठवीं रेखा जो मध्य सप्तक के स की होती थी आवश्यकता होने पर ही खींची जाती थी। दोनों सप्तकों में अन्तर प्रदर्शित करने के लिए रेखाओं के अंत में बाईं ओर कुछ विशिष्ट चिन्ह बना देते थे, जिसे क्लेफ सिगनेचर (Clef Signature) कहते थे। इससे सुविधा यह हुई कि रेखाओं के ऊपर ट्रबिल अथवा बास क्लेफ लिखने की आवश्यकता नहीं हुई। नीचे की तालिका से यह बात स्पष्ट हो जावेगी।

स रे ग म प ध नी सां रें गं मं

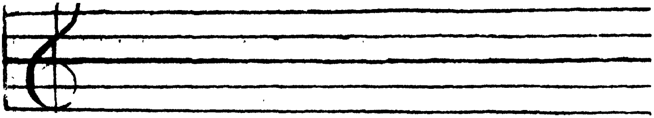


सा नी़ ध़ प़ म़ ग़ रे़ सा़ नी़़ ध़़ प़़

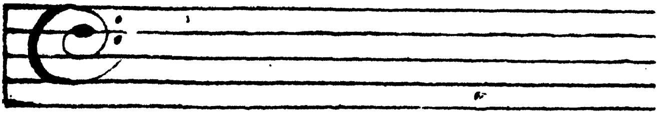
इस प्रकार हम देखते हैं कि इन रेखाओं पर स्वर लिखने के दो तरीके हैं, प्रथम तो किसी एक रेखा पर और दूसरे दो रेखाओं के बीच अण्डाकार आकृति बनाकर। अतः प्रत्येक रेखा का स्वर अपने

पिछली रेखा के स्वर से दो स्वर ऊँचा होता है, अर्थात् ट्रेबल क्लेफ में नीचे से पहली रेखा ग की, दूसरी पंचम की, तीसरी निषाद की, चौथी तार सप्तक की रिषभ की और पांचवी रेखा तार सप्तक के मध्यम की होगी।

ट्रेबिल क्लेफ



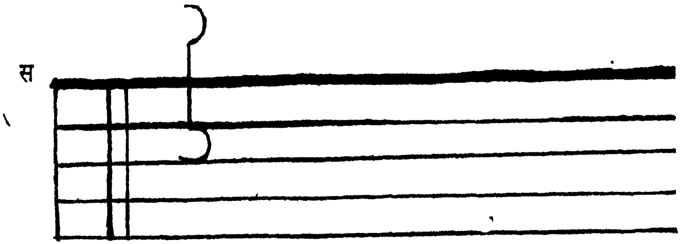
बास क्लेफ



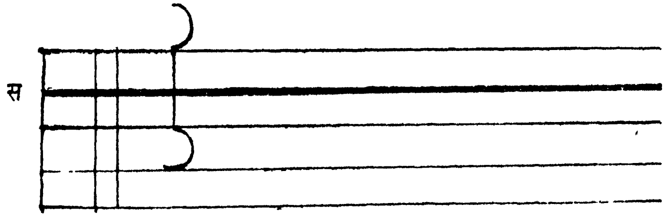
कभी-कभी एक तीसरे प्रकार के क्लेफ का प्रयोग होता है, जिसे (C) क्लेफ कहते हैं। इसमें आवश्यकतानुसार मध्य सा की रेखा अपना स्थान बदला करती है। इसीलिये इस क्लेफ को अस्थिर क्लेफ (movable clef) और उपर्युक्त दो क्लेफों को स्थिर क्लेफ (fixed clef) कहते हैं। सी क्लेफ में किसी भी रेखा को मध्य सा की रेखा मानी जा सकती है। इस तरह सी क्लेफ के पाँच प्रकार सम्भव है। ऊपर से प्रथम रेखा को सा मानने पर बेरी (Beri Tone), दूसरी रेखा को सा मानने पर टेनर टोन (Tenor Tone), तीसरी रेखा को सा मानने पर आल्टो (Alto), चौथी रेखा पर सा मानने पर मेज़ो सापरानो (Mezzo Saprano), तथा अंतिम रेखा पर मध्य सा मानने पर सापरानो टोन (Saprano Tone) की रचना होती है। जब कभी 'सी' क्लेफ के किसी भी प्रकार को प्रदर्शित करना होता है तो पाँचों रेखाओं पर बाँई ओर दो खड़ी

रेखा खींचते हैं और सा की रेखा पर एक विशिष्ट चिन्ह बनाते हैं। तथा जिस रेखा को 'सा' मानते हैं उस पर (मध्य का सा) Middle C लिख देते हैं। नीचे 'सी' क्लेफ के पाँचों प्रकारों की रूप रेखा दी जा रही है।

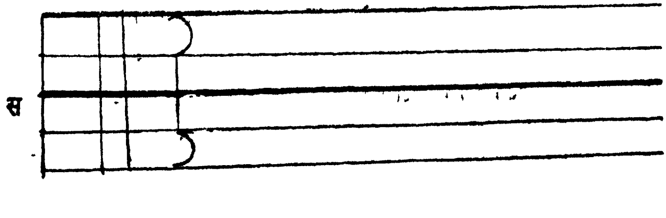
बेरी टोन



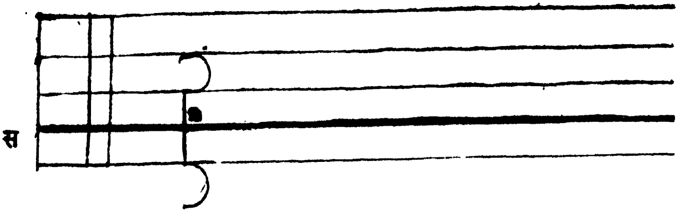
टेनर टोन



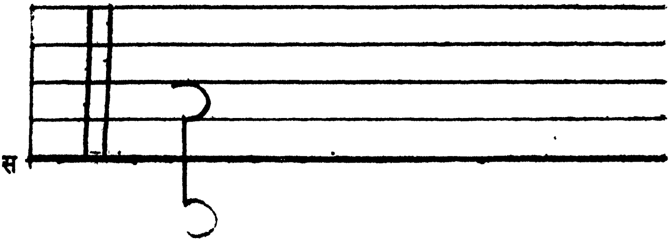
आल्टो टोन



मेज़ो सपरानों टोन



सपरानों



स्वर और उनके चिह्न

स रे ग म प ध नी सां—भारतीय उच्चारित स्वर।
Do Re Me Fo So Le Si Do—पश्चिमी उच्चारित स्वर।
C D E F G A B C—पश्चिमी लिखित स्वर।
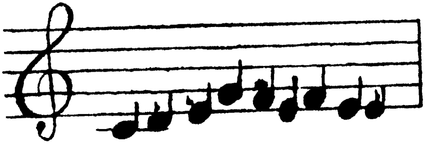
हम यह बता ही चुके हैं कि स्वरों को (शुद्ध हो अथवा विकृत) दिखाने के लिये अंडाकार चिन्ह का प्रयोग करते हैं। पश्चिमी देशों में भी उत्तरी भारत के समान स्वरों के तीन प्रकार माने जाते हैं, शुद्ध, कोमल और तीव्र। इन तीनों के निम्नलिखित चिन्ह है।

शुद्ध—(Natural Note) ♮

कोमल—(Flat Note) ♭
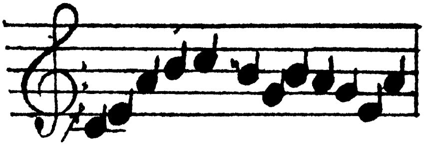
तीव्र—(Sharp Note) ♯

आवश्यकतानुसार उपर्युक्त संकेत अंडाकार स्वर के ऊपर लगा दिये जाते हैं, जैसे—



स रे ग प म ग म ग ग

अगर किसी स्वर-रचना में जब किसी स्वर का एक ही रूप जैसे कोमल ग का प्रयोग होता है तो प्रत्येक बार उस स्वर के चिन्ह को लगाने की आवश्कता नहीं, केवल उस स्वर की रेखा पर क्लेफ-चिन्ह के पश्चात् उसका चिन्ह बना देंगे। फलस्वरूप तीनों सप्तक का वह स्वर विकृत अथवा शुद्ध माना जायेगा। इस प्रकार के चिन्ह को 'की सिगनेचर' (Key Signature) कहते हैं। उदाहरण के तौर पर अगर ग की रेखा पर कोमल का चिन्ह बना देंगे तो उस रचना का चिन्ह बना देंगे तो उस रचना प्रत्येक गंधार कोमल माना जायेगा। अगर उसी स्वर-रचना में कहीं-कहीं शुद्ध गंधार का प्रयोग होता है तो शुद्ध गंधार के ऊपर शुद्ध माना जावेगा और शेष कोमल माने जावेंगे। नीचे के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जावेगी।



'की सिगनेचर' स ग ध नी सां नी प नी ध प ग म

इस प्रकार हम देखते हैं कि (Key Signatures) की सहायता से भारतीय रागों की स्वरलिपि इस पद्धति में सरलता से लिखी जा सकती है।

कभी-कभी किसी गीत अथवा वृन्दावादन में उपर्युक्त पाँच रेखाओं के स्वरों से अधिक स्वरों की आवश्यकता पड़ती है, जैसे—ट्रेबिल क्लेफ में सा नी ध अथवा तार का पंचम। ऐसे समय में आवश्यकतनुसार पाँच समानान्तर रेखाओं के ऊपर अथवा नीचे एक छोटी सी रेखा खींच लेते हैं और उस रेखा पर स्वर-चिन्ह बनाते हैं। इस नवीन छोटी रेखा को लेजर (Leger line) कहते हैं। उपर के चित्र में नीचे खींची हुई छोटी रेखा लेजर लाइन है।

कण अथवा स्पर्श-स्वर—इसे Grace note अथवा Appoggiatura कहते हैं। मूल स्वर पर आते समय किसी अन्य स्वर को स्पर्श करने की क्रिया को कण कहते हैं। अतः पाश्चात्य-पद्धति में कण-स्वर को मूल-स्वर के पूर्व छोटे आकार में लिखते हैं और आवश्यकतानुसार कण-स्वर की रेखा पर एक विशिष्ट प्रकार की आकृति बना देते हैं। उदाहरण के लिये अंतिम चित्र देखो। कण तथा मूल स्वर के नीचे एक चंद्राकार बना देते हैं। जिस प्रकार उत्तर भारतीय संगीत में विभिन्न प्रकार के कण, खटका, मुर्की आदि का प्रयोग होता है, उसी प्रकार पश्चिमी संगीत में भी विभिन्न प्रकार के कण प्रयोग किये जाते हैं।

प्रथम प्रकार के कण में स्पर्श-स्वर को मूल स्वर का आधा समय दिया जाता है।

दूसरे प्रकार के कण को पासिंग नोट (Passing Note) कहते हैं। इसमें कण-स्वर को स्पर्श मात्र करते हैं और उसे कम से कम समय देते हैं। इस प्रकार के कण में अर्धचन्द्राकार की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु कण-स्वर के ऊपर की रेखा के सिरे को काट देते हैं।

तीसरे प्रकार के कण को टर्न (Turn) कहते हैं। इसमें तीन स्वरों का कण प्रयोग किया जाता है। जिस स्वर पर इस कण को लगाना होता है उस पर इस प्रकार का आकार ꩜ बना देते हैं। अगर

ग पर यह कण लगाया गया तो इसका अर्थ होगा ग रे सा रे ।

कभी-कभी इसी आकार को सीधा लगाते हैं जैसे ꜱ, तो कण उलट जाता है । ग पर लगाने से रे ग म ग और रे पर लगाने से स रे ग रे होगा ।

कभी-कभी किसी स्वर पर इस कण का प्रयोग करते हैं और मूल-स्वर के दाहिने ओर एक बिन्दु रख देते हैं । बिन्दु का यह अर्थ होगा कि पहले मूल स्वर उच्चारित हो और तत्पश्चात अन्य स्वर का प्रयोग हो । अतः ग पर इस कण का प्रयोग करने से उसका रूप ग म ग रे ग होगा ! यहाँ पर यह स्मरण करा देना आवश्यक होगा कि प्रत्येक कण का प्रयोग मूल-स्वर के मात्रे के अंदर होता है ।

विश्रांति (Pause)—इसका चिन्ह है 𝄐 अर्थात् अर्ध-चन्द्राकार के बीच में एक बिन्दु । जिस स्थान पर किसी स्वर अथवा ठहराव (Rest) पर, इसका प्रयोग किया जाता है, तो उसे उसके निश्चित मात्रा तक लम्बा किया जाता है । जब विश्रान्ति (Pamse) का प्रयोग किसी स्वर पर किया जाता है तो उस स्वर को लम्बा करते हैं और जब किसी ठहराव (Rest) पर इसका प्रयोग होता है तो ठहराव के निश्चि मात्रे तक शाँत रहते हैं । जब इसका प्रयोग रचना के अंत में किया जाता है तो यह अर्थ होता है कि वह रचना अब समाप्त हो गई है । इस प्रकार यह तीन प्रकार से प्रयोग किया जा सकता है ।

विभाग—किसी भी रचना की प्रत्येक पंक्ति को कई निश्चित विभागों में विभक्त किया जाता है, जिसे बार (Bar) अथवा विभाग कहते हैं । विभाग स्टाफ में अर्थात् पांचों रेखाओं के बीच में एक खड़ी रेखा द्वारा प्रदर्शित किया जाता है । कभी-कभी विभाग की रेखा के बीच में चार बिन्दु जैसे— ⁞ बना देते हैं । इसका यह अर्थ

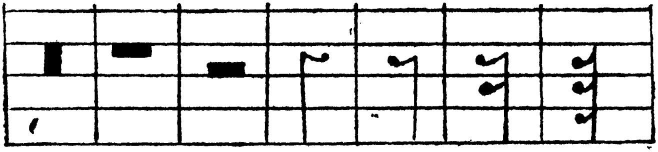
होगा कि वह विभाग दुहराया जायेगा। जब खड़ी लकीर के दोनों ओर चार-चार बिंदु रख दिये जायेंगे तो दोनों ओर के विभाग दुहराये जावेंगे।

स्लर (Slur)—इसका चिन्ह अर्धचन्द्राकार ⌒ है। जिन स्वरों के ऊपर अथवा नीचे इस चिन्ह का क्रमशः प्रयोग होता है वे बेला के एक छड़ी में बजाये जाते हैं। उदाहरणार्थ गम प के ऊपर अथवा नीचे अर्धचन्द्राकार का चिन्ह लगा देने से पाश्चात्य पद्धति में ये तीनों स्वर बेले के एक छड़ी में बजाये जावेगे किन्तु भारतीय पद्धति में इसका ⌒ अर्थ मींड होगा। यह बात ध्यान रहे कि पाश्चात्य पद्धति में मींड ऐसी कोई वस्तु है ही नहीं। स्लर को लेंगाटो (legatto) भी कहते हैं।

विराम (Rest)—पाश्चात्य संगीत में वृन्दवादन (orchestra) का अधिक महत्व होने की वजह से ठहराव की विशेष आवश्यकता पड़ती है। इसका कारण यह है कि कभी वृन्दवादन के सभी वाद्यों को शाँत रहना पड़ता हैं तो कभी किसी एक वाद्य को अथवा कभी किसी दूसरे को। ठहराव की अवधि में भी अन्तर होना स्वभाविक है अतः मुख्य सात प्रकार के ठहराव माने गये हैं।

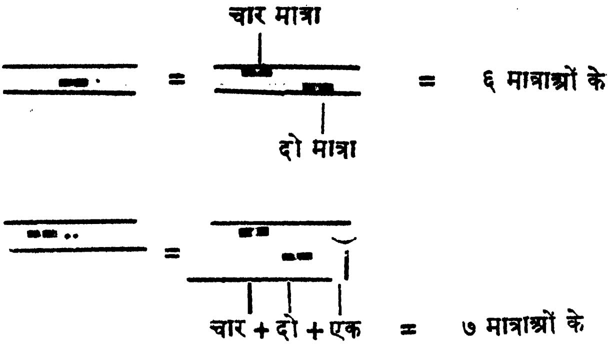
नाम	मान
(१) ब्रीव रेस्ट (Breve Rest)	८ मात्रा
(२) सेमी ब्रीव (Semi Breve Rest)	४ ,,
(३) मिनिम (Minim Rest)	२ ,,
(४) क्राचेट (Crotchet Rest)	१ ,,
(५) क्वेयर (Quaver Rest)	१/२ ,,
(६) सेमी क्वेयर रेस्ट (Semi Quaver Rest)	१/४ ,,
(७) डेमी सेमी क्वेयर (Demi Semi Quaver Rest)	१/८ ,,

इनका निम्नलिखित चिन्ह है।



पाश्चात्य संगीत के विषय में एक विशेष बात यह ध्यान रखने की है कि कहीं भी इस प्रकार का वर्णन नहीं मिलता कि क्राचेट एक मात्रे का होता है अथवा मिनिम दो मात्राओं का होता है इत्यादि इत्यादि। कारण यह हैकि इन मात्राओं में पारस्परिक सम्बन्ध माना गया है अर्थात् प्रत्येक मात्रा अपनी पिछली मात्रा से दूनी होती है, जैसे एक ब्रीव दो सेमी ब्रीव के, एक सेमी ब्रीव दो मिनिम के, एक मिनिम दो क्राचेट के, एक क्राचेट दो क्वेयर के, एक क्वेयर दो सेमी क्वेयर के, एक सेमी क्वेयर दो डेमी सेमी क्वेयर के और एक डेमी सेमी क्वेयर दो हेमी डेमी सेमी क्वेयर के।

जब कभी किसी विराम के दाहिने ओर एक बिन्दु रख देते हैं तो इसका यह अर्थ होता है कि इस बिन्दु को उसके पहले के मात्रे का आधा मान प्राप्त हो जाता है अर्थात जब कभी चार मात्रे के विराम के दाहिने ओर एक बिन्दु रख देंगे तो इस बिन्दु का मान चार का आधा दो हो जावेगा। अतः कुल का मान ४ + २ = ६ मात्रायें हो जावेगी। इसी प्रकार जब एक बिन्दु और रख देंगे तो इस बिन्दु का मान उसके पहले बिन्दु का आधा अर्थात एक हो जावेगी और कुल का मान ४ + २ + १ = ७ मात्रायें हो जावेगी। इस प्रकार जैसे-जैसे बिन्दु की संख्या बढ़ाती जावेगी, कुल मान बढ़ता जावेगा और सीमान्त बिन्दु का मान पहले का आधा होगा। विष्णु दिगम्बर स्वरांकन-पद्धति में भी इसी विधि का प्रयोग होता है।



स्वर और उनका काल मान

पाश्चात्य स्वरांकन पद्धति की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें स्वर और उनका कालमान एक साथ चला करता है। जिस प्रकार की क्रिया उत्तर भारतीय संगीत में सर्वप्रथम एक स्वर लिखते हैं और तत्पश्चात उसका कालमान नीचे दिखाते है, पाश्चात्य संगीत में नहीं होती है। वहाँ इन दोनों का अटूट सम्बन्ध रहता है। अतः स्वरों के कालमान-संकेत पर विचार करना आवश्यक होगा। पीछे हम यह बता चुके हैं कि स्वर किसी रेखा के ऊपर अथवा दो रेखाओं के बीच में अण्डाकार आकृति द्वारा दिखाया जाता है। अण्डाकार आकृति में ही थोड़ा सा परिवर्तन कर देने से कालमान में परिवर्तन हो जाता है।

संख्या	अंग्रेजी नाम	अमेरिकन नाम	चिन्ह	मान	भारतीय काल-मान
१	ब्रीव		||O||	दो सेमी ब्रीव	८ मात्रा
२	सेमी ब्रीव	होल नोट		दो मिनिम	४ ,,
३	मिनिम	हाफ़ नोट		दो क्राचेट	२ ,,
४	क्राचेट	क्वार्टर नोट		दो क्वेयर्स	१ ,,
५	क्वेयर	१/८ नोट		दो सेमी क्वेयर दो सेमी डेमी	१/२ ,,
६	सेमी क्वेयर	१/१६ नोट		क्वेयर	१/४ ,,
७	डेमी सेमी क्वेयर	१/३२ नोट		दो डेमी डेमी सेमी क्वेयर	१/८ ,,
८	डेमी डेमी सेमी क्वेयर	१/६४ नोट			१/१६ ,,

पाश्चात्य ताल-विभाग

पाश्चात्य देशों में उत्तर भारतीय तालों के समान जिसमें निश्चित मात्रे, विभाग तथा बोल होते हैं, कोई वस्तु नहीं होती। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि पाश्चात्य संगीत में ताल हैं ही नहीं। ताल हैं, किन्तु उनका रूप भारतीय तालों से बिल्कुल भिन्न है। न उनमें ठेके का झंझट होता है और न मात्राओं का। तालों की संख्या भी मर्यादित होती है। नीचे उनके कुछ लक्षण संक्षेप में दिये जा रहे हैं।

(१) पाश्चात्य तालों में किसी भी प्रकार का ठेका अथवा बोल नहीं होता जैसा कि उत्तर भारतीय तालों में होता है। इसीलिये भारतीय ताल उन लोगों के लिये विशेष कौतूहल और आश्चर्य की वस्तु है।

(२) पाश्चात्य किसी भी ताल में मात्राओं की संख्या निश्चित नहीं होती है; किन्तु विभाग की मात्रायें निश्चित होती है।

(३) किसी भी ताल के विभागों में मात्राओं का सम होना अनिवार्य है। इसीलिये केवल एक ही विभाग (bar) को देखने से यह मालूम हो जाता है कि अमुक गीत किस ताल में है, क्यों कि अगर किसी बंधिश के प्रथम विभाग में चार मात्रायें हैं तो उसकी सभी विभागों में चार-चार मात्रायें होगी।

(४) किसी भी ताल की जाति उसके विभाग की मात्राओं की संख्या के ऊपर निर्भर है, जैसे—दो मात्राओं वाला विभाग सिम्पिल ड्यूपल टाइम (Simple Duple Time) और तीन मात्राओं वाला विभाग सिम्पिल ट्रिपल टाइम (Simple Triple Time) कहलाता है।

(५) पाश्चात्य ताल गीत-रचना से किसी भी प्रकार पृथक नहीं किया जा सकता। इसका मुख्य कारण यह है कि पाश्चात्य तालों का

विकास गीत अथवा बंधिश-रचना के अनुसार और उसके साथ-साथ हुआ है। इसके विपरीत हम भरतीय संगीत में देखते हैं कि ताल गीत से बिल्कुल पृथक किया जा सकता है, क्योंकि भारतीय तालों का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ है।

तालों के प्रकार—पाश्चात्य ताल के मुख्य दो प्रकार हैं, सिम्पिल टाइम (Simple Time) और कम्पाउन्ड टाइम (Compound Time)। सिम्पिल टाइम में प्रत्येक मात्रा बिन्दु-रहित और कम्पापन्ड टाइम में प्रत्येक मात्रा बिन्दुयुक्त होता है। पीछे हम यह बता चुके हैं कि किसी मात्रा-चिन्ह की दाँई ओर एक बिंदु रख देने से बिंदु का मान उस मात्रे का आधा हो जाता। इसीलिये सिम्पल टाइम की प्रत्येक मात्रा (beat) दो, चार अथवा आठ भागों में विभक्त की जा सकती है, और कम्पाउन्ड टाइम की प्रत्येक मात्रा (beat) तीन, छः, नौ, बारह, पंद्रह आदि विभागों में विभक्त की जा सकती है।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के तीन-तीन विभाग हो सकते हैं।

(अ) Duple Time (डयूपल टाइम) के प्रत्येक विभाग में दो-दो मात्राये (Beats) होती हैं।

(ब) Triple Time (टिपल टाइम) के प्रत्येक विभाग में तीन-तीन मात्रायें (Beats) होती हैं।
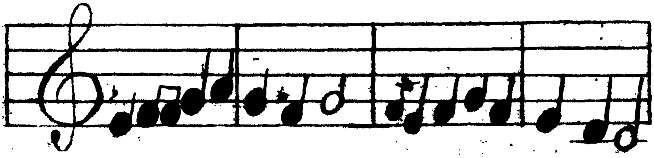
(स) Quadrupre (क्वाड्रूपुल) के प्रत्येक विभाग में चार-चार मात्रायें होती हैं।

पाश्चात्य संगीत की स्वरलिपि पद्धति में तालों का संकेत भिन्न (Fractions) में होता है, जैसे–१/४, ४/६, ४/८ इसे (Time Signature) कहते हैं। ताल-संकेत को (Staff) अर्थात् रेखाओं के प्रारम्भ होते ही, सप्तक-चिन्ह (Clef signature) के बाद लिखते हैं। भिन्न के ऊपर की संख्या यह बताती है कि प्रत्येक विभाग (Bar) में कितानी मात्रायें हैं और नीचे कीं संख्या यह बताती है कि प्रत्येक मात्रा का क्या मान है। मान निकालने के लिये सेमी ब्रीव में जो चार

मात्राओं का होता है, भिन्न के नीचे की संख्या में जो चार मात्राओं का होता है, भिन्न के नीचे की संख्या से भाग देते हैं। जो अंक भाग देने से आता है, उसी कालमान की प्रधानता उस ताल में होती है और इसमें भिन्न के ऊपर की संख्या से गुण कर देने से पूरे विभाग की मात्रा ज्ञात हो जाती है। उदाहरणार्थ ताल संकेत २/४ है तो इसका यह अर्थ होगा कि क्राचेट की जो एक मात्रे के बराबर होता है, प्रधानता होगी। क्योंकि नीचे की संख्या से सेमी ब्रीव में भाग देंगे। नीचे की ओर संख्या ४ है और सेमी ब्रीव भी ४ मात्राओं के बराबर होती है। इसलिए ४ को ४ में भाग देने से १ बार जायेगा। भिन्न के ऊपर की संख्या दो है इसलिये प्रत्येक विभाग का मात्र १ × २ = २ मात्रा होगी। इसी प्रकार ६/८ ताल-संकेत का यह अर्थ होगा कि ताल में ४/८ = १/२ मात्रा की प्रधानता है और प्रत्येक विभाग में १/२ × ६ = ६/२ मात्रायें हैं। ४/४ का यह अर्थ होगा कि क्राचेट अर्थात् एक मात्रे की प्रधानता है और प्रत्येक विभाग १ × ४ = ४ मात्राओं का है। इसे कामन टाइम (Common Time) भी कहते हैं। यह भारतीय तीन ताल के समान है।

अभी तक पाश्चात्य स्वरलिपि के लिखने की रीति पर प्रकाश डाला जा चुका है। अब तीन ताल में बद्ध निम्नांकित स्वर-समुदाय को पाश्चात्य स्वरलिपि में लिख कर इसे समाप्त करेंगे।

ग म म प ध । प म प— । ^{म} ग म प म । ग रे सा—



—×—

पाश्चात्य डाइटोनिक स्केल (Diatonic Scale)

पाश्चात्य स्वर सप्तक में मुख्य दो प्रकार के टोन—होल टोन और सेमी टोन (Whole tone and Semi tone) होने की वजह से यह डायटोनिक स्केल कहलाता है। 'डाय' के अर्थ होते हैं 'दो'। प्रत्येक टोन के दो-दो उपविभाग हैं। होल टोन के उपविभाग हैं मेजर टोन और माइनर टोन (Major tone and Minor tone इसी प्रकार सेमी टोन के उपविभाग हैं, मेजर सेमी टोन और माइनर सेमी टोन (Major Semi tone and Minor Semi tone)

इन उपविभागों का नामकरण श्रुत्यान्तर अर्थात दो स्वरों के बीच का अन्तर के आधार पर हुआ है। मान लिया सा की आन्दोलन संख्या २४० है और रे की २७० इसलिये स और रे की श्रुत्यांतर $\frac{२७०}{२४०} = \frac{९}{८}$ होगी। इसी प्रकार अगर ग की आन्दोलन-संख्या ३०० है तो रे और ग की श्रुत्यांतर $\frac{३००}{२७०} = \frac{१०}{९}$ होगी। म की आन्दोलन संख्या ३२० है, इसलिये ग और म के बीच $\frac{३२०}{३००} = \frac{१६}{१५}$ की श्रुत्यांतर होगी। प की आन्दोलन-संख्या ३६० है, इसलिये म और प की श्रुत्यांतर $\frac{३६०}{३२०} = \frac{९}{८}$ होगी। ध की आन्दोलन संख्या ४०० है, इसलिये प और ध के बीच $\frac{४००}{३६०} = \frac{१०}{९}$ की श्रुत्यांतर होगी नी की आन्दोलन संख्या ४५० है, इसलिये ध और नी के बीच $\frac{४५०}{४००} = \frac{९}{८}$ की श्रत्यांतर होगी। इसी प्रकार तार सा की आन्दोलन संख्या ४८० है, इसलिये नी और स के बीच $\frac{४८०}{४५०} = \frac{१६}{१५}$ की श्रुत्यांतर होगी। यहाँ यह स्मरण करा देना आवश्यक होगा कि पाश्चात्य स्वर सप्तक में सात के स्थान पर आठ स्वर होते हैं; और इस प्रकार से तार का सा भी मध्य सप्तक में जोड़ लिया जाता है। इसीलिये पाश्चात्य सप्तक को आक्टेव (octave) कहते हैं जिसका अर्थ आठ होता है।

इन स्वरांतर अथवा गुणांतर को देखने से यह ज्ञात होता है कि पाश्चात्य स्वर सप्तक में अर्थात डायटोनिक स्केल में $\frac{९}{८}$, $\frac{१०}{९}$ और $\frac{१६}{१५}$ का गुणांतर अथवा श्रुयांतर है।

$\frac{९}{८}$ श्रुत्यांतर को मेजर टोन कहते हैं। $\frac{१०}{९}$,, ,, माइनर टोन ,, ,,	होल टोन
$\frac{१६}{१५}$,, ,, मेजर सेमी टोन ,, ,, $\frac{२५}{२४}$,, ,, माइनर सेमी टोन ,, ,,	सेमी टोन

उपर्युक्त स्वरांतर के आधार पर जो डायटोनिक स्केल के स्वरांतर थे, सर्वप्रथम एक हारमोनियम की रचना की गई। इसकी विशेषता यह थी कि अगर उसी स्वर को जिसके आधार पर प्यानों के सम्पूर्ण स्वरों की रचना हुई थी, षड्ज मान कर बजाया जाता तो सभी स्वर सुरीले होते, किन्तु अगर उस स्वर के बजाय किसी भी दूसरे पर्दे को सा मान कर बजाया जाता तो सभी स्वर बेसुरे होते। इसका कारण यह था कि अगर रे को सा मानकर बजाया जाता तो ग रे हो जाता म ग हो जाता इत्यादि इत्यादि। रे की आन्दोलन-संख्या २७० है और ग की ३०० इसलिये जब रे सा हो गया और ग रे हो गया तो सा और रे का गुणाँतर अथवा श्रुत्याँतर $\frac{३००}{२७०} = \frac{१०}{९}$ होती, जब कि स और रे के बीच $\frac{९}{८}$ श्रुत्यांतर होनी चाहियें थी। इस प्रकार से आपस के प्रत्येक दो स्वरों के बीच का स्वरांतर कुछ से कुछ हो गया। अतः हारमोनियम की इस कमी को दूर करने का प्रयत्न किया गया क्योंकि एक हारमोनियम केवल एक ही स्वर को स मानकर बजाई जा सकती थी।

विद्वानों ने पूरे आक्टेव (सप्तक)को बारह बराबर-बराबर भागों में बाँट दिया। इससे आपस के प्रत्येक दो स्वरों का अन्तर बराबर हो गया, अर्थात् स से जितना ऊँचा कोमल रे, उतना ही ऊँचा कोमल रे से शुद्ध रे, उतना ही ऊँचा शुद्ध रे से कोमल ग इत्यादि इत्यादि। इस नवीन सप्तक को इक्वली टेम्पर्ड स्केल (Equally tempered

scale) की संज्ञा दी गई। इस प्रकार का स्वर-विभाजन आधुनिक प्यानों और हारमोनियम में प्रयोग होता है।

इससे लाभ तो यह हुआ कि स्वरांतर बराबर होने के कारण किसी भी स्वर को षड्ज मान कर बजाना सम्भव हो गया, किन्तु इसमें यह दोष आ गया कि अब एक भी स्वर पूर्णतः सच्चे नहीं रहे। उदाहरणार्थ स और रे का स्वरांतर ९/८ और रे और ग का स्वरांतर १०/९ के स्थान पर और कुछ हो गया। इस थोड़े से अन्तर को पाश्चात्य विद्वानों ने क्षम्य समझा और व्यवहार की दृष्टि से प्रत्येक स्वर को सा मान कर गाने की सुविधा को अधिक महत्व दिया। केवल अनुभवी कान ही इस थोड़े से अंतर को पहचानने की क्षमता रखते हैं, इसीलिये हारमोनियम का जो कि श्रुतियों की दृष्टि से बिलकुल बेसुरी है, साधारण जनता में अधिक प्रचार है।

× + ×

स्वर-संवाद (Consonance)—दो या दो से अधिक स्वरों को एक साथ उत्पन्न करने से जो भाव उत्पन्न होता है, उसे स्वर-संवाद कहते हैं। जब मेल खाने वाले दो या दो से अधिक स्वरों को एक साथ बजाते हैं तो शुभ स्वर-संवाद (Harmony) होता है, और जब न मेल खाने वाले स्वरों को एक साथ बजाते हैं तो अशुभ स्वर-संवाद उत्पन्न होता है।

सरल स्वर-संवाद (Simple Harmony)—जब किसी गीत अथवा धुन को सजाने के लिये उसमें दो या दो से अधिक मेल खाने वाले स्वरों को एक साथ बजाते हैं, तो उत्पन्न भाव को सरल स्वर-संवाद कहते हैं।

काउंटर प्वाइंट हारमोनी (Counter point Harmony)—जब किसी गीत अथवा धुन की सुन्दरता को बढ़ाने के लिये बंदिश को दो या दो से अधिक मेल खाने वाले स्वरों को स मानकर एक साथ गाते अथवा बजाते हैं तो उस समय जो भाव अथवा मधुरता उत्पन्न होती है, उसे काउन्टर प्वाइन्ट हारमोनी कहते हैं।

छठवाँ अध्याय

भारतीय सङ्गीत का संक्षिप्त इतिहास

संगीत की उत्पत्ति कब, कैसे और किसके द्वारा हुई, अंधकार के गर्त में है। वास्तव में संगीत का इतिहास स्वयं मानव का इतिहास है। जैसे-जैसे मानव का आध्यात्मिक विकास होता गया, संगीत की भी उन्नति हुई। इसकी उत्पत्ति के विषय में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने अनुमान लगाये हैं तथा अनेक किवंदतियां भी प्रचलित हैं, जिनमें संगीत की उत्पत्ति देवी-देवताओं से बताई गई हैं। इस प्रकार की मुख्य किवदंतियां सात हैं, किन्तु इनमें पारस्परिक विरोध की प्रचुरता हैं। अतः इनका आश्रय लेना व्यर्थ है।

संगीत का सम्पूर्ण इतिहास—प्रागैतिहासिक काल से आज तक का समय, मुख्य तीनों भागो में विभाजित किया जा सकता है—

(१) **प्राचीन काल**—आदि काल से ८०० ई० तक का समय।
(२) **मध्य काल**—८०० ईसवी से १८०० ईसवी तक का समय।
(३) **आधुनिक काल**—१८०० ईसवी से आज तक का समय।

—×—

प्राचीन काल पुनः तीन विभागों में विभक्त किया जा सकता है, (अ) वैदिक काल (ब) संदिग्ध काल और (स) भरत काल। नीचे हम इन पर क्रमशः विचार करेंगे।

(अ) वैदिक काल—इस काल का प्रारम्भ आदि काल से १००० ईसा पूर्व तक माना जाता है। इस काल में हिन्दू धर्म के चारों वेदों की रचना हुई अतः इसे वैदिक काल कहा गया। चारों

वेद में पूरा सामवेद संगीत पर आधारित है। उसके मंत्रो का पाठ संगीतमय होता रहा है और आज भी उसका कुछ अंश सुनने को मिल जाता है। 'सामगायन' में केवल तीन स्वर प्रयोग किये जाते थे, जिनका नाम स्वरित, उदत्त और अनुदात्त था। उदात्त का अर्थ ऊँचा और अनुदात्त का नीचा स्वर था, किन्तु 'स्वरित' के अर्थ में बड़ा मतभेद है। कही इसे उदात्त और अनुदात्त के बीच का स्वर, कहीं उदात्त से ऊँचे और कहीं अनुदात्त से नीचे का स्वर माना गया है। इसका अर्थ जो भी माना गया हो, किन्तु स्वरों की संख्या तीन होने के विषय में कोई मतभेद नहीं है। उदात्त को गंधार, अनुदात्त को षड़ज और स्वरित को रिषभ माना गया। नारदीय शिक्षा और वृहद्देशी में भी केवल तीन ही स्वरों का उल्लेख है। धीरे-धीरे स्वरों की संख्या ३ से ४, ४ से ५, और ५ से ७ हुई।

सर्व प्रथम ऋक प्रतिसाख्य ग्रन्थ (४०० ईसा पूर्व) में चार स्वरों का वर्णन मिलता है। इसके बाद स्वरों की संख्या ४, ५, और अंत में ७ हुई। वैदिक काल में ही सात स्वर विकसित हो चुके थे। मान्डूकि शिक्षा का यह पंक्ति इसका प्रमाण है, "सप्त स्वरास्तु गीयन्ते सामभिः सामगैर्बुधैः"। इतना ही नहीं बल्कि ग्रामों का भी जन्म हो चुका था। इस काल की अन्य ग्रन्थों में यत्र-तत्र अनेक वाद्यों का उल्लेख मिलता है, जैसे—दुंदुभी, भू-दुदुम्भी, वानस्पति, आघाती, कांड वीणा, वारणम, तूणव, बाकुर आदि। इन सब से यह सिद्ध होता है कि वैदिक काल में ही संगीत का अधिक प्रचार हो चुका था। और संगीत-साधना बहुत कुछ ऊँची उठ चुकी थी।

(ब) संदिग्ध काल—इस काल की अवधि १००० ईसा पूर्व से १ ईसवी तक है। इसे संदिग्ध काल संगीत की दृष्टि से इसलिये कहा गया कि उस समय की कोई भी ग्रन्थ ऐसी नहीं है जिससे उस समय के संगीत का थोड़ा-बहुत ज्ञान हो सके। केवल इस काल

के कुछ उपनिषद मिलते हैं, जिनमें संगीत के विषय में थोड़ी सी सामग्री प्राप्त होती है।

छांदोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों में साम गायन का उल्लेख मिलता है, तथा अनेक संगीत-वाद्यों के नाम भी मिलते हैं। महाभारत में सप्त स्वरों और गंधार ग्राम का उल्लेख मिलता है। 'ऋक-प्रतिसांख्य' में सर्वप्रथम संगीत-शास्त्र का नियमित रूप मिलता है, तीन स्थानों और सप्तसुरों आदि का वर्णन मिलता है। रामायण में विभिन्न प्रकार के वाद्यों तथा संगीत की उपमायों का उल्लेख मिलता है। इससे यह सिद्ध होता है कि संगीत का प्रचार बराबर चलता रहा।

(ख) **भरत काल**--इस काल की अवधि १ ईसवी से ८०० ई० तक है। इस काल की मुख्य विशेषता यह है कि जिस प्रकार आज कल राग-गायन प्रचलित है, उसी प्रकार उस काल में जाति-गायन प्रचलित थी।

दूसरी विशेषत यह है कि सर्वप्रथम इसी काल में तीन ग्रामों बाईस श्रुतियों, सात स्वरों, अट्ठारह जातिओं, इक्कीस मूर्छनाओं आदि का वर्णन मिलता है।

इस काल के निम्नलिखित मुख्य ग्रन्थ हैं।

(१) "**भरत का नाट्यशास्त्र**"—इस ग्रन्थ की रचना-काल के विषय में अनेक मत हैं, किन्तु अधिकांश विद्वानों द्वारा इसका समय पांचवी शताब्दी माना जाता है। यह ग्रन्थ नाट्य के सम्बन्ध में लिखी गई थी, किन्तु २८ वें, २९ और ३० वें अध्यायों में संगीत सम्बन्धी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय संगीत का संबन्ध नाट्य से बहुत घनिष्ट हो गया था। नाट्य शास्त्र के इन अध्यायों में निम्नलिखित सामग्रियां मिलती हैं,—

(क) भरत ने केवल मध्यम और षड्ज ग्राम का उल्लेख किया है। गंधार ग्राम को पूर्णतया छोड़ दिया है।

(ख) षड्ज ग्राम की सात और मध्यम ग्राम की ग्यारह जातियाँ अर्थात् कुल अट्ठारह जातियां मानी गई हैं। अट्ठारह जातियों को पुनः दो भागों में विभाजित किया गया है, शुद्ध और विकृत। शुद्ध जातियां सात हैं और विकृत ग्यारह। इनमें षड्ज और मध्यम दोनों ग्रामों की शुद्ध और विकृत जातियां मिली हुई हैं।

(ग) "जाति" के दस लक्षण माने गये हैं,—ग्रह, अंश, तार, मंद्र, न्यास, अपन्यास, अल्पत्व, बहुत्व, षाडवत्व और ओडवत्व।

(घ) केवल काकली नी और अंतर ग विकृत स्वर माने गये हैं।

(च) वादी, संवादी, अनुवादी और विवादी का वर्णन किया गया है। संवादी स्वरों की दूरी नौ अथवा तेरह श्रुतियों की तथा विवादी बीस श्रुतियों की दूरी पर मानी गई है।

(छ) स, म और प की चार-चार श्रुतियाँ, ग और नी की दो-दो और रे तथा ध की तीन-तीन श्रुतियाँ मानी गई हैं।

(२) **दत्तिला कृत दत्तिलम**—इस ग्रन्थ को भी लगभग पाँचवी शताब्दी के आस-पास का माना जाता है। इसमें,

(क) भरत के नाट्य शास्त्र के विपरीत केवल गांधार ग्राम का उल्लेख है।

(ख) विवादी स्वरों का अन्तर केवल दो श्रुतियाँ मानी गई हैं, किन्तु संवादी स्वरों की दूरी भरत के ही समान है।

(ग) भरत की अट्ठारह जातियां मान ली गई हैं।

(३) **मतंग मुनि कृति 'बृहद्देशी'**—इस ग्रंथ के समय के विषय में भी अनेक मत हैं। कुछ विद्वान इसे तीसरी शताब्दी का, कुछ चौथी शताब्दी का, कुछ पांचवी शताब्दी का और कुछ छठवीं शताब्दी का ग्रंथ मानते हैं। इस ग्रंथ में निम्नलिखित सामग्रियां प्राप्त होती हैं।

(क) संगीत के इतिहास में सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ में 'राग' शब्द का प्रयोग किया गया है और आज राग का कितना महत्व है किसी से छिपा नहीं है।

(ख) इसमें ग्राम और मूर्छना का विस्तृत वर्णन तथा गांधार ग्राम का उल्लेख किया गया है।

(ग) सामगायन के प्रारंभिक तीन स्वरों का वर्णन है।

(घ) इसमें भी दात्तिल के समान संवादी स्वरों की दूरी नौ अथवा तेरह श्रुतियों पर तथा विवादी दो श्रुतियों की दूरी पर स्वीकार की गई है।

(च) इस पुस्तक में वर्णित जाति के दस लक्षण भरत के नाट्य शास्त्र के सदृश हैं।

(छ) जाति के सात प्रकारों में राग-जाति भी एक प्रकार था।

(४) **नारद द्वारा लिखित 'नारदीय शिक्षा'**—इस ग्रन्थ की रचना काल के विषय में विद्वानों के अनेक मत हैं। अधिकांश विद्वान इसे दसवीं और बारहवीं शताब्दी के बीच का मानते हैं। इसमें सात ग्राम रागों, जैसे—षाड़व, पंचम, मध्यम, षड़ज, साधारिता आदि का उल्लेख है।

इन ग्रन्थों के अतिरिक्त शिला-लेख, तामिल ग्रन्थ 'पारिपाडल' बौद्ध नाटक 'सिला पद्दिगारम' आदि द्वारा इस काल के संगीत के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।

मध्य काल

इस काल की अवधि ८ वीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक है। इस काल को भी दो मुख्य उपविभागों में बाँटा जा सकता है, (अ) पूर्व मध्य काल और (ब) उत्तम मध्य काल। अब इन दोनों विभागों पर क्रमशः विचार करेंगे।

(अ) **पूर्व मध्य काल**—यह काल ८वीं शताब्दी से १३वीं शताब्दी तक माना जाता है। इस समय की शारंगदेव कृति 'संगीत रत्नाकर' और कवि विजयदेव कृत 'गीत गोविन्द'से यह ज्ञात होता है कि जिस प्रकार आजकल राग-गायन प्रचलित है इसी प्रकार उस काल में प्रबन्ध गायन प्रचलित था। इसीलिये इस काल को **प्रबन्ध काल** भी कहते हैं। नवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक भारतवर्ष में संगीत की अच्छी उन्नति हुई। उस समय की रियासतों में संगीत का और भी अधिक प्रचार और विकास हुआ। इसीलिये यह काल संगीत का स्वर्ण-युग कहा जाता है। ग्यारहवीं शताब्दी से मुसलमानों का आक्रमण प्रारम्भ हुआ और लगभग बारहवीं शताब्दी तक भारत के शासक हो गये। उनकी सभ्यता संस्कृति और संगीत का प्रभाव भारतीय संगीत पर पड़ा। अतः उत्तर भारतीय संगीत जिस पर उनका विशेष प्रभाव पड़ा, दक्षिणी संगीत से धीरे-धीरे पृथक हो गया। संगीत की इस नवीन रूप का विकास अकबर के राज्य-काल में विशेष रूप से हुआ। इस काल की निम्नलिखित संगीत सामग्रियाँ हैं।

(१) **संगीत मकरंद**—इस ग्रन्थ के रचयिता नारद हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि एक से अधिक नारद हुये, क्योंकि विभिन्न समय में नारद कृत विभिन्न पुस्तकें मिलती हैं, जैसे नारदीय शिक्षा

संगीत मकरन्द, नारदीय संहिता आदि। संगीत मकरन्द के समय के विषय में अनेक मत हैं। अधिकांश विद्वान इसे नवीं शताब्दी का मानते हैं।

(क) रागों का स्त्री, पुरुष और नपुंसक वर्गों में विभाजन सर्व प्रथम इसी पुस्तक में प्राप्त होता है। अतः यह ग्रंथ राग-रागिनी पद्धति का आधार ग्रन्थ कहा जा सकता है।

(ख) संगीत मकरन्द में केवल यही विभाजन ही नहीं वरन् अन्य विभाजन भी मिलते हैं, जैसे—कंपन के आधार पर, समय के आधार पर इत्यादि इत्यादि।

(२) गीत गोविंद—इसकी रचना बारहवीं शताब्दी में जयदेव के द्वारा हुई। जयदेव केवल कवि ही नहीं, गायक भी थे। इस पुस्तक में स्वरलिपि रहित संस्कृत में लिखे गये प्रबन्धों और गीतों का संग्रह है। अतः इनसे उस समय की संगीत का ज्ञान नहीं हो सकता।

(३) संगीत रत्नाकर—इस ग्रन्थ की रचना १३ वीं शताब्दी में शारंगदेव द्वारा हुई। यह ग्रन्थ केवल उत्तरी भारत की ही नहीं वरन् दक्षिणी भारतीय संगीत का भी आधार ग्रन्थ माना जाता है। इससे कुछ विद्वानों का अनुमान है कि ग्रंथकार ने उत्तरी और दक्षिणी संगीत को एक में समन्वय करने की चेष्टा की।

(क) इसमें शारंगदेव ने संवादी स्वर का अन्तर आठ अथवा बारह श्रुतियों का माना है जब कि उनके पूर्व के भरत, दात्तिल और मतंग ने नौ अथवा तेरह श्रुतियों का अन्तर माना था।

(ख) इसमें गांधार ग्राम का विस्तार पूर्वक वर्णन मिलता है।

(ग) नारद के स्त्री, पुरुष, नपुंसक राग विभाजन के साथ-साथ अन्य सिद्धांत भी स्वीकार किये गये है।

(घ) शुद्ध और विकृत कुल बारह स्वर माने गये हैं तथा भरत के समान १८ जातियाँ मानी गई है। जाति के तेरह लक्षण—ग्रह, अंश

न्यास, अपन्यास, सन्यास, विन्यास, मन्द्र, तार, अल्पत्व, बहुत्व, ओड़वत्व, षाड़वत्व, अन्तर मार्ग बताये गये हैं।

(च) ग्रन्थकार के मतानुसार जातियों से ग्राम राग और ग्राम राग से अन्य राग उत्पन्न हुये। उन्होंने तीस ग्राम राग माने हैं।

संगीत रत्नाकर के विषय में बहुत बड़ी समस्या यह है कि उसे समझना बहुत कठिन है और अभी तक कोई भी व्यक्ति इसे ठीक प्रकार से नहीं समझ सका है।

उत्तर मध्य काल—इस काल का प्रारम्भ १३ वीं शताब्दी के बाद से १८ वीं शताब्दी तक माना जाता है। इस काल में फारस और उत्तर भारतीय संगीत का मिश्रित स्वरूप भली भांति विकसित हुआ। अतः इसे **विकास काल** भी कहा जाने लगा। मुसलमानों का प्रभाव विशेषकर उत्तर भारत में रहा, इसलिये उत्तर भारतीय संगीत में कर्नाटक संगीत की तुलना में फारस के संगीत का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। अधिकांश मुसलमान राजाओं को संगीत से विशेष प्रेम था, अतः उन लोगों ने अपने दरबार में संगीतज्ञों को आश्रय दिया।

अलाउद्दीन (१२९६-१३१६) के शासन काल में अमीर खुसरो नामक संगीत विद्वान हुये। कहा जाता है कि उन्होंने वाद्यों में तबला और सितार, रागों में साजगिरि, सरपदा, जिल्फ आदि, गीतों के प्रकार में कव्वाली और तराना तथा ताल में झूमरा, सूल, आड़ा चारताल आदि का आविष्कार किया। दक्षिण के संगीतज्ञ गोपाल नायक और अमीर खुसरो के बीच गायन प्रतियोगिता हुई थी।

इस काल की सर्वप्रथम पुस्तक लोचन कृत **'राग-तरंगणी'** है। इसका रचना-काल पन्द्रहवीं शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाता है। इसके अनुसार शुद्ध थाट काफी है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि सम्पूर्ण रागों को कुल बारह थाटों अथवा मेलों में विभाजित किया गया है। आधुनिक थाट-राग वर्गीकरण का बीजारोपण 'राग तरंगणी' द्वारा हुआ, ऐसा लोगों का विश्वास है।

कल्लिनाथ एक प्रसिद्ध संगीतज्ञ था। राग-रागिनी वर्गीकरण का एक मत इन्हीं के नाम पर आधारित है। इसी बीच भक्ति-आन्दोलन चल पड़ी जिससे भजन,कीर्तन द्वारा संगीत का विशेष प्रचार हुआ।

अकबर (१५५६-१६०५) के शासन काल में संगीत की बहुत उन्नति हुई। उस समय की संगीत मिश्रित थी। अकबर स्वयं बड़ा संगीत प्रेमी था। आइने-अकबरी के अनुसार अकबर के दरबार में छत्तीस संगीतज्ञ थे, जैसे-नायक बैजू, तान तरंग, गोपाल, तानसेन आदि। इनमें तानसेन मुख्य था। मुसलमान होने के पूर्व तानसेन का नाम तन्ना मिश्र था। तानसेन की वंश और शिष्य-परम्परा सैनी घराना कह लाई। तानसेन ने अनेक रागों की रचना की जैसे—दरबारी कान्हड़ा, मियां की सारंग, मियाँ मल्हार आदि। आज भी तानसेन के बनाये हुये बहुत से ध्रुपद मिलते हैं। अकबर के समकालीन ग्वालियर के राजा **मानसिंह तोमर** से ग्वालियर घराना प्रारम्भ हुआ। तुलसीदास, सूरदास, मीरा बाई आदि भक्त कवियों और कवियित्रियों के द्वारा जनता में संगीत का प्रचार बढ़ा। इसी समय दाक्षिण के संगीतज्ञ पुंडरीक विट्ठल ने चार ग्रंथों की रचना की, राग माला, राग मंजरी, सद्राग चंद्रोदय और नर्तन निर्णय।

जहांगीर (१६०५-१६२७) के दरबार में भी कई संगीतज्ञ थे, जैसे—बिलास खाँ, छतर खां, मक्खू आदि। १६१० में दक्षिण के विद्वान पंडित सोमनाथ ने 'राग विबोध' पुस्तक लिखा। इसमें भी उत्तरी और दक्षिणी संगीत को एक में समन्वित करने का प्रयत्न किया गया है १६२५ में पं० दामोदर मिश्र द्वारा 'संगीत दर्पण' लिखी गई।

शाहजहां (१६२७—१६५८) के दरबारी संगीतज्ञों के नाम निम्नलिखित हैं,—दिरंग खाँ और लाल खाँ जिन्हें शाहजहाँ द्वारा 'गुण समुद्र' की उपाधि मिली, जगन्नाथ जिन्हें 'कविराज' की उपाधि

मिली, और तानसेन के दामाद विलास खाँ। लाल खां तानसेन के पुत्र थे।

संगीत पारिजात—१६५० ई० में पण्डित अहोबल द्वारा लिखी गई। दीनानाथ ने फारसी में इसका अनुवाद किया।

(क) ऐसा मालूम पड़ता है कि पण्डित अहोबल ने २६ विकृत स्वरों के नाम तो दिये हैं किन्तु राग अध्याय में कई स्वर छोड़ दिये हैं, लेकिन ऐसी बात नहीं है क्योंकि उस समय एक ही स्वर के लिये दो या दो से अधिक नाम थे।

(ख) इस ग्रन्थ में प्रथम बार वीणा के तार पर बारहों स्वर की स्थापना की गई है।

(ग) संगीत पारिजात का शुद्ध सप्तक उत्तरी भारत के काफी थाट के और दक्षिणी भारत के खरहर प्रिया के सदृश्य था।

लगभग इसी समय हृदय नारायण देव द्वारा **हृदय कौतुक और हृदय प्रकाश** ग्रन्थ लिखे गये।

औरंगजेब (१६५८—१७०७) संगीत का कट्टर विरोधी था। उसने संगीत को जड़ से उखाड़ फेंकने का भरसक प्रयत्न किया। संगीतज्ञों के वाद्य जला दिये गये और उन्हें संगीत छोड़ देने के लिये बाध्य किया गया। जिन लोगों ने सम्राट के भय से संगीत छोड़ दिया, उन्हें राज्य की ओर से पेन्शिन दी गई। औरंगजेब ने यह कहा कि संगीत को इतनी गहराई में गाड़ दो कि उसकी आवाज फिर कभी न सुनाई दे। फिर भी औरंगजेब के क्रूर अत्याचार इसे पूर्णतया नहीं रोक सकी। इसी काल में कुछ संगीत ग्रंथों की रचना हुई, जैसे—

चतुर्दण्ड प्रकाशिका—१६६० ई० में दक्षिण के संगीतज्ञ व्यंकटमुखी द्वारा लिखा गया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि उस समय के स्वर सप्तक में अधिक से अधिक ७२ थाटों की उत्पत्ति हो सकती है तथा एक थाट से कुल ४८४ राग उत्पन्न हो सकते हैं। यद्यपि

ग्रंथकार ने एक सप्तक में १२ स्वर माने हैं, किन्तु एक स्वर के कई नाम भी स्वीकार किये हैं।

भाव भट्ट ने तीन ग्रंथ लिखे, अनूप संगीत रत्नाकर, अनूप और बिलास तथा अनुपांकुश। प्रथम पुस्तक में ग्रंथकार ने समस्त रागों को २० थाट अथवा मेल में बांटा है।

मोहम्मद शाह रंगीले (१७१६—१७४८) स्वयं संगीत के प्रेमी थे तथा उनके दरबार मे सदारंग और अदारंग दो प्रमुख गायक थे जिनके ख्याल आज भी प्रचुरता से प्रचलित हैं। लगभग इसी समय शोरी मियाँ ने टप्पे का आविष्कार किया।

अट्ठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मुसलमानों का राज्य धीरे-धीरे समाप्त होने लगा और अंग्रेजों का प्रभुत्व बढ़ने लगा। केवल रियासतों में संगीत की साधना चलती रही। श्री निवास कृत 'राग तत्व विबोध' इसी समय का है और इसी काल में त्रिवट, गजल, तराना आदि का प्रचार हुआ।

आधुनिक काल

१८०० ईसवी से आज तक का समय अधुनिक काल के अंतर्गत आता है। इसे पुनः दो भागों में बाँटा जा सकता है, १८०० से १६०० तक और १६०० से आज तक का समय।

भारतवर्ष में फ्रान्सिसी, डच, पुर्तगीज, अंगरेज आदि आये, किन्तु अंगरेजों ने ही धीरे-धीरे लगभग सम्पूर्ण भारत पर आधिपत्य जमा लिया। उनका मुख्य ध्येय भारत पर शासन करना था, इसलिये उनसे संगीत को आश्रय देना अथवा उसके प्रचार करने की आशा करना व्यर्थ है। उस समय संगीत-दीपक कुछ रियासतों में हवाओं का झकोरा सहते हुये किसी प्रकार जल रहा था। दूसरी ओर संगीतज्ञों की भी कमी हो गई थी। वे केवल अपने संबंधियों को बड़े मुश्किल से बताते थे। अन्य किसी बाहर का उनसे सीखना लगभग असम्भव था। धीरे-धीरे संगीत समाज की कुलटा स्त्रियों के हाथ जा पड़ी। समाज ऐसे व्यक्तियों से घृणा करता ही था, संगीत से भी घृणा करने लगा। संगीत अमोद-प्रमोद का साधन हो गया और सभ्य समाज में केवल संगीत का नाम लेना पाप समझा जाने लगा। जहां समाज के अधिकांश लोग संगीत से घृणा करते थे, वहाँ संगीत के कुछ पोषकों का भी प्रादुर्भाव हुआ।

(क) सन् १८१३ में पटना के **मुहम्मद रजा** ने '**नगमाते-आसफी**' नामक पुस्तक लिखा जिसमें उन्होंने तत्कालीन राग-रागिनी पद्धति के चार मतों (शिव, कल्लिनाथ, भरत और हनुमत मत) का खंडन किया और अपना एक नवीन मत छः राग छत्तीस रागिनियों का बनाया।

उनके पुस्तक की दूसरी विशेषता यह थी कि उसमें काफी थाट के स्थान पर बिलावल को शुद्ध थाट माना गया।

(ख) जयपुर के राजा प्रताप सिंह देव ने **'संगीत सार'** नामक पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने भी शुद्ध थाट बिलावल माना।

(ग) कृष्णानन्द व्यास ने **'संगीत राग कल्पद्रुम'** में उस समय के प्रचलित ध्रुपद, ख्याल आदि का संग्रह किया, किन्तु बिना स्वर-लिपि के केवल शब्द बेकार हुये।

(घ) बंगाल के सर सौरेन्द्र मोहन टैगोर ने उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में **'यूनिवर्सल हिस्ट्री आफ म्यूजिक'** पुस्तक लिखी। इसमें उन्होंने राग-रागिनी पद्धति स्वीकार किया।

१६०० के बाद अर्थात् बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही संगीत का प्रचार और प्रसार होने लगा। इसका मुख्य श्रेय स्व० पं० विष्णु दिगम्बर पलुस्कर और विष्णु नारायण भातखंडे को प्राप्त होता है। जिस प्रकार संगीत के मुख्य दो अंग है, क्रियात्मक और शास्त्र, उसी प्रकार पंडित विष्णु दिगम्बर के तथा भातखण्डे एक ही उद्देश्य प्राप्ति के दो पथ-प्रदर्शक हैं। आकाशवाणी (रेडियो) और चलचित्र (सिनेमा) द्वारा भी संगीत का काफी प्रचार हुआ। भारत की स्वतंत्रता के पश्चात संगीत के प्रचार और प्रसार में आकाशवाणी का विशेष हाथ रहा है। आकाशवाणी के स्तर को बढ़ाने के लिये उसमें भाग लेने वाले कलाकारों की ध्वनि-परीक्षा सरकार द्वारा नियुक्त संगीतज्ञों की मंडली अखिल भारतवर्ष में लेती है और कलाकारों की श्रेणी तथा उनका पारिश्रमिक निर्धारित करती है। आकाशवाणी प्रतिवर्ष एक संगीत प्रतियोगिता और एक वृहद संगीत सम्मेलन आयोजित करती है। सम्मेलन में संगीत संबंधी विवाद ग्रस्त विषयों पर भी विचार-विमर्ष होता है। संगीत नाटक अकादमी स्थापित किया गया और उच्च संगीत-शिक्षा के लिये योग्य विद्यार्थियों को २५० रु० प्रति माह छात्रवृत्ति दिया गया। प्रति शनिवार को साढ़े नौ बजे रात्रि से ग्यारह बजे रात्रि तक तथा प्रति रविवार को सवा नौ बजे दिन से दस बजे दिन तक भारत के प्रमुख संगीतज्ञों का क्रमशः

प्रत्यक्ष गायन तथा अप्रत्यक्ष गायन (रेकार्ड) होता है। प्रति वर्ष गणतंत्र भारत के सभापति चार प्रौढ़ संगीतज्ञों को अलग-अलग एक हजार रुपया और एक काश्मीरी शाल देकर सम्मानित करते हैं। आकाशवाणी ने केवल शास्त्रीय संगीत का ही नहीं वरन् लोक संगीत, भजन आदि को भी बहुत कुछ प्रोत्साहन दिया। विभिन्न केन्द्रों में गीत और भजन के रेकार्ड तैयार किये गये। दूसरी ओर चलचित्र संगीत ने शास्त्रीय संगीत का विशेष प्रचार तो नहीं किया किन्तु भारत के प्रत्येक व्यक्ति के कान में संगीत का थोड़ा अंश अवश्य पहुँचा दिया।

जनता की ओर से कई स्थानों पर संगीत-सम्मेलनन अयोजित किये गये। उल्लेखनीय नाम है, प्रयाग, लखनऊ, कानपुर, बनारस, गोंडा, बम्बई, कलकत्ता, आदि। प्रयाग में एक वर्ष प्रयाग संगीत समिति की ओर से और दूसरे वर्ष प्रयाग विश्वविद्यालय की ओर से संगीत-सम्मेलन अयोजित की जाती है। इधर कई वर्षों से प्रयाग विश्वविद्यालय सम्मेलन न कर के जनता को निराश कर रही है।

इस समय देश भर में अनेक संगीत-संस्थायें हैं जो संगीत की शिक्षा दे रही है, जैसे—प्रयाग संगीत समिति इलाहाबाद, मैरिस म्यूजिक कालेज लखनऊ, संगीत समाज कानपुर, गांधर्व महाविद्यालय पूना, स्कूल आफ इन्डियन म्यूजिक बम्बई, स्कूल आफ इन्डियन म्यूजिक बड़ौदा, म्यूजिक कालेज कलकत्ता, लूकर गंज संगीत विद्यालय इलाहाबाद, शंकर संगीत विद्यालय ग्वालियर, व्यास संगीत विद्यालव बम्बई, माधव संगीत विद्यालय ग्वालियर आदि-आदि। भारतवर्ष के सम्पूर्ण हाई स्कूल, इन्टरमीडियेट तथा अन्य परीक्षाओं में संगीत एक वैकल्पिक (optional) विषय हो गया है। इसके अतिरिक्त इलाहाबाद, (केवल लड़कियों के लिये) पटना, बनारस, आगरा, नागपुर, काश्मीर, पंजाब, बड़ौदा विश्वविद्यालयों के बी० ए० के पाठ्यक्रम में संगीत का समावेश हो गया है। इधर संगीत

की बहुत सी पुस्तकें शास्त्र और क्रियात्मक दोनों पर लिखी गई। उनमें से मुख्य हैं,—

(१) मारिफुन्नग़मात (तीन भाग)—ठाकुर नवाब अली खां, लखनऊ।

(२) संगीत कौमुदी (तीन भाग)—विक्रमादित्य सिंह निगम, लखनऊ।

(३) संगीत शास्त्र (दो भाग)—महेश नारायण सक्सेना, इलाहाबाद।

(४) संगीत शास्त्र दर्पण—श्रीमती शान्ति श्रीखंडे।

(५) संगीत शास्त्र दर्शन—गांधर्व महाविद्यालय मंडल, प्रयाग।

(६) राग विज्ञान (पांच भाग)—वी० एन० पटवर्धन, पूना।

(७) सरल वाइलिन परिचय (दो भाग)—जी० एन० गोस्वामी, लखनऊ।

(८) व्यास कृति (चार भाग)—शंकर गणेश व्यास, बम्बई।

(९) संगीत शास्त्र (चार भाग)—मेरिस कालेज, लखनऊ

(१०) आवाज सुरीली कैसे करें—यल० एन० गर्ग, हाथरस।

(११) तबला शास्त्र—मधुकर गणेश गोडबोले।

इनके अतिरिक्त अंग्रेजी में भी संगीत की कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। संगीत की कुछ मासिक पत्रिकायें पिछले कई वर्षों से जनता की सेवा कर रहीं हैं, जैसे बम्बई से **'संगीत कला विहार'** और हाथरस से **संगीत**। कुछ दिनों पूर्व झांसी से 'संगीत लहरी' नामक पत्रिका भी चलती रही, किन्तु अब उसका प्रकाशन बन्द हो गया है। हाथरस से प्रकाशित मासिक पत्रिका संगीत जगत की लगभग बीस वर्ष से सेवा करती आ रही है। इसी प्रकार 'संगीत कला विहार' लगभग आठ वर्ष में प्रकाशित हो रही है। 'संगीत कार्यालय' हाथरस की विशेषता यह रही है कि वहां से मासिक पत्रिका के साथ-साथ संगीत की प्राचीन पुस्तकों के अनुवाद तथा संगीत की अन्य उपयोगी पुस्तकों का प्रकाशन भी हो रहा है।

विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

विष्णु दिगंबर जी का जन्म कुरुन्दवाड़ रियासत में सन् १८७२ की श्रावण पूर्णिमा को हुआ। इनके पिता श्री दिगम्बर गोपाल का एक अच्छे हरि-कीर्तनकार थे। श्री विष्णु दिगम्बर एक प्रतिभाशाली छात्र थे, किन्तु अभाग्यवश आतिशबाजी से उनकी नव-ज्योति क्षीण हो गई जिससे उन्हें अध्ययन छोड़ देना पड़ा। परन्तु कौन जानता था कि इस दुर्घटना में शास्त्रीय संगीत का उज्जवल भविष्य छिपा है। कोई उद्योग-धन्धा के योग्य न होने के कारण श्री दिगंबर जी को मिरज रियासत के संगीताचार्य पण्डित बाल कृष्ण बुआ के पास संगीत सीखने के लिए भेज दिया गया। रियासत के तत्कालीन महाराजा इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर इन्हें अपने आश्रय में रख लिया।

एक हृदय-विदारक घटना—एक कथा है कि सार्वजनिक सभा में रियासत के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति निमन्त्रि किये गये जिनमें से विष्णु दिगम्बर जी भी एक थे। परन्तु सभा में दिगम्बर जी के गुरु को नहीं निमन्त्रित किया गया। दिगम्बर जी ने जब इसका कारण जानना चाहा तो लोगों से यह उत्तर मिला, कि "वह तो गवैये हैं। उनको बुलाने की क्या जरूरत ?" यह वाक्य विष्णु जी के हृदय में तीर की भांति चुभ गया और वे सोचने लगे कि सभ्य समाज में संगीतज्ञों की यह दशा ? उनके कठिन परिश्रम का यह अपमान ! यह सोच, श्री विष्णु दिगम्बर ने उसी क्षण संगीतज्ञों की दयनीय स्थिति को सुधारने एवं संगीत को शिष्ट समाज में स्थापित करने का व्रत लिया और रियासत के सारे सुख को ठुकरा कर वहाँ से चल

पड़े। चलते समय उनके पास केवल एक लोटा और कम्बल था। विष्णु जी अनेक स्थानों में घूम-घूम कर अपनी कला द्वारा जनता को वास्तविक संगीत का रसास्वादन कराते रहे। इसी यात्रा में उन्हें जूनागढ़ के गिरिनार पर्वत पर एक बैरागी संगीतज्ञ के दर्शन हुए। उन्हीं बैरागी के आदेशानुसार विष्णु जी पंजाब की ओर बढ़े और वहां उन्होंने अपने प्रभावशाली एवं सुमधुर कंठ द्वारा जनता के हृदय पर विजय प्राप्त की। ५ मई सन् १६०१ को लाहोर में गांधर्व महा-विद्यालय की स्थापना की परन्तु आर्थिक समस्या उन्हें चिंतित किये रही। इसी बीच उनको काश्मीर के तत्कालीन महाराजा का निमंत्रण मिला। काश्मीर नरेश विष्णु जी के गायन से बहुत प्रभावित हुए, उन्होंने गांधर्व महाविद्यालय की आर्थिक कठिनाइयों का निवारण करने का वचन दिया।

बम्बई में संगीत विद्यालय की स्थापना—लाहौर के पश्चात् उन्होंने बम्बई तथा नासिक में संगीत विद्यालयों की स्थापना की। सन् १६०२ में बम्बई में पंडित जी द्वारा स्थापित किया हुआ विद्यालय बन्द हो गया, परन्तु उनके स्वर्गारोहण के पश्चात् उनके शिष्यों तथा अन्य संगीत प्रेमियों ने गांधर्व महाविद्यालय मंडल की स्थापना की। इस समय मंडल के अन्तर्गत ६० संस्थायें कार्य कर रही हैं। मंडल की ओर से 'संगीत कला बिहार' नामक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती है। श्री दिगम्बर के मुख्य शिष्यों में संगीत मार्तंड पं० ओंकार नाथ ठाकुर, श्री बी० ए० कुशालकर, श्री नारायण राव व्यास, पं० विनायक राव पटवर्धन, श्री बी० आर० देवधर व श्री वी० एन० ठकार आदि हैं।

सन् १६२० से पंडित जी के हृदय में राम की भक्ति उठी। इसके पश्चात पंडित जी मीरा, सूर आदि के पदों को विभिन्न रागों में गाने लगे। अब वे गेरुआ वस्त्र भी धारण करने लगे।

सन् १६२२ में उन्होंने नासिक में 'रामनाम आधार' आश्रम खोला। इस आश्रम में संगीत के माध्यम कीर्तन तथा राम कथा का प्रचार करने लगे।

मृत्यु—श्री विष्णु जी ने जिन स्थानों पर अपनी कला का प्रदर्शन दिया उनमें से उल्लेखनीय नाम हैं—बड़ौदा, ग्वालियर, दिल्ली, रावलपिन्डी, भरतपुर, हैदराबाद (सिंध) अहमदाबाद, नवद्वीप, पूना, सीलोन, वर्मा, नैपाल, काशी आदि। उन्होंने लगभग ५० संगीत-पुस्तकों की रचना की, जिसमें मीरा, सूर, कबीर आदि की रचनाओं को स्वराभूषित किया। सन् १६६० में इन्हें लक्वा मार गया, लेकिन संगीत सेवा में लगे रहे और उनका अन्तिम दिन भी एक साधक की भाँति ही व्यतीत हुआ। २१ अगस्त सन् १६३१ को श्री दिगम्बर जी ने अपना शरीर त्याग दिया। विष्णु जी के बारह पुत्र हुये और उनमें से प्रथम ग्यारह पुत्रों की मृत्यु बाल्यावस्था में ही हो गई। केवल उनके सब से छोटे पुत्र श्री दत्तात्रेय विष्णु पलुस्कर अपने जीवन के लगभग पैंतीस वर्ष तक संगीत की सेवा करते रहे और १६५५ की विजयादशमी को इस संसार से सदा के लिये विरक्त हो गये।

विष्णु नारायण भातखंडे

श्री विष्णु नारायण भातखंडे जी का जन्म सन् १८६० में कृष्ण जन्माष्टमी को बंबई प्रांत में बालकेश्वर नामक स्थान में हुआ। इनके पिता को संगीत से विशेष प्रेम था। अतः उन्होंने इनको सेठ वल्लभ दास जी से सितार की तथा गुरुराव जो बुआ बेलबाथकर से गायन की शिक्षा दिलाई। इनके अलावा इन्होंने जयपुर के मोहम्मद अली खाँ तथा ग्वालियर के पं० एकनाथ से भी संगीत सीखा। इन्हें बांसुरी पर अच्छा अधिकार था। इन्होंने सन् १८८३ में बी०ए० और १८६० में एल०एल०बी० की परीक्षायें उत्तीर्ण की और कुछ दिनों तक करॉची और बंबई की छोटी अदालतों में वकालत भी करते रहे।

संगीत शास्त्र की पुस्तकों के अभाव के कारण संगीत का रूप अव्यास्थत हो गया था। इन्होंने इस कमी को अनुभव किया और उसे दूर करनेका व्रत लिया। संगीत-शास्त्र की लगभग सभी उपलब्ध पुस्तकों का अध्ययन कर उसका सरलतम रूप पुस्तकों के रूप में हमारे सामने रखा। इनके मुख्य ग्रन्थों में 'लक्ष्य संगीत', "अभिनव राग मंजरी" "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति" बड़ी महत्व पूर्ण हैं। इन पुस्तकों के द्वारा संगीत का कितना अधिक प्रसार संभव हो सका है इसे प्रत्येक संगीत-प्रेमी जानते हैं। 'लक्ष्यसंगीत' नामक ग्रन्थ की कल्पना उन्हें कैसे हुई इसका उल्लेख उन्होंने अपनी डायरी में लिखा है कि हैदराबाद में अप्पा तुलसी नाम के एक विद्वान पंडित और संगीत शास्त्रज्ञ रहते थे। उन्होने भातखडे जी को संस्कृत के कुछ श्लोक सुनाये जिनमें अनेक रागों के स्वरूप और नियमों का वर्णन किया गया था। प्राचीन और आधुनिक रागों में क्या अन्तर है इसका जिक्र किसी भी ग्रन्थ में उपलब्ध न था अतः इसे सुन

कर भातखंडे जी आश्चर्य चकित हो गये। बाद में उन्हें मालूम हुआ कि वे श्लोक स्वयं अप्पा तुलसी द्वारा रचित थे। भातखंडे जी ने सोचा कि मैं स्वयं आधुनिक रागों के स्वरूप का वर्णन श्लोकों में क्यों न करूं ? और इसी विचार के परिणाम स्वरूप उन्होंने 'लक्ष्य संगीत' जैसा ग्रन्थ निर्मित किया।

प्रथम संगीत सम्मेलन—कहा जाता है कि भातखंडे जी प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने सन् १६१६ में प्रथम संगीत सम्मेलन आयोजित किया जिसमें "आल इण्डिया म्यजिक एकैडमी" स्थापित करने का प्रस्ताव पास हुआ। शीघ्र ही उसकी स्थापना भी हुई किन्तु अधिक समय तक न चल सकी। इन्होंने सन् १६२५ तक ५ वृहद संगीत सम्मेलन आयोजित किये। अंतिम सम्मेलन सन् १६१६ में किया जिसका मुख्य ध्येय लखनऊ में शास्त्रीय संगीत विद्यालय की स्थापना करना था। भातखंडे जी अपने इस उद्देश्य में सफल रहे और सन् १६२६ में "मेंरिस म्युजिक कालेज" की स्थापना की, जो आज भातखंडे संगीत विद्यालय के नाम से प्रख्यात है। सन् १६२६ में इसे विश्व विद्यालय का रूप प्रदान किया गया। आज कल इस विद्यापीठ के प्रिंसिपल उनके प्रिय शिष्य श्री कृष्ण नारायण राताजनकर है। भातखंडे जो ने तीसरा संगीत विद्यापीठ ग्वालियर में खोला जो आजकल माधव संगीत विद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार पंडित जी ने तीन संगीत विद्यालय स्थापित किये। भातखंडे जी अन्तिम क्षण तक संगीत की सेवा करते रहे। १६ सितम्बर १६३६ को उनका स्वर्गवास हुआ।

वास्तव में विष्णु दिगम्बर और भातखंडे एक दूसरे के पूरक थे। इन दोनों में से किसी का भी अभाव संगीत के लिये अनिष्टकर होता। इन दोनों विभूतियों के प्रति हम में जो आदर और श्रद्धा है अक्षुण्य रहेगी।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ ३७, झूमर ताल के अंतिम विभाग का शुद्ध रूप:—

| धिं धिं धागे तिरकिट |
३

पृष्ठ ४०, ताल पंजाबी के दूसरे विभाग का शुद्ध रूप:—

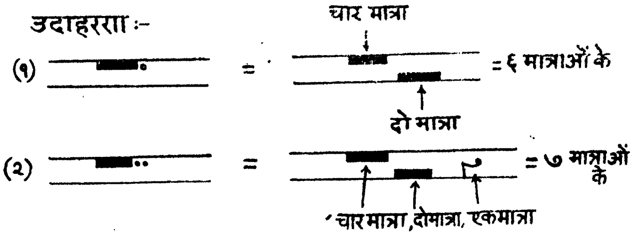
| धा ऽती ऽक ता |
२

पृष्ठ ४२, पंचम सवारी ताल के दूसरे प्रकार के तीसरे विभाग का शुद्ध रूप:—

| ति, तीना तिरकिट तूना किड़नग |
०

पृष्ठ १२२ के अंतिम वाक्य का शुद्ध रूप, जिस स्वर पर इस कण को लगाना होता है, उस पर इस प्रकार का आकार ◡ बना देते हैं।

पृष्ठ १२६ का चित्र निम्नलिखित होना चाहिये।



पृष्ठ १२७, मींड़ का चिन्ह यह |⌐| होना चाहिये।

पृष्ठ १३०, प्रथम पंक्ति में 'भिन्न के नीचे की संख्या में जो चार मात्राओं का होता है' इसे काट दो।

पृष्ठ १३० में ऊपर से ग्यारहवीं पंक्ति में चौथा शब्द 'मात्र' के स्थान पर 'मान' होना चाहिए।

पृष्ठ १३० में चित्र के ऊपर के स्वर-समुदाय के अंतिम विभाग में रिषम शुद्ध होना चाहिये।

पृष्ठ १३१, द्वितीय गद्यांश के छटवीं पंक्ति में 'आन्दोलन संख्या '३३०' के स्थान ३२० हना चाहिये।

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.
3 6 JUN 1985	5671		